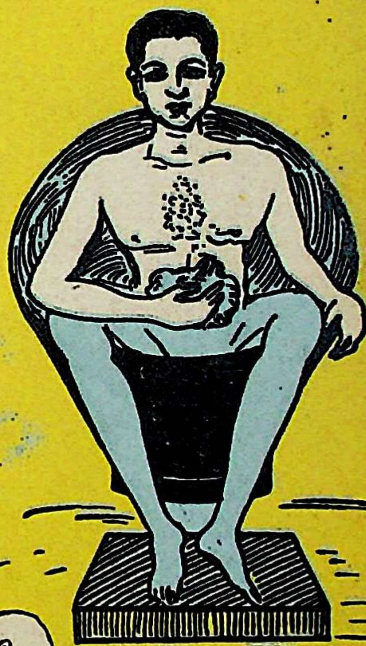
बवासीर
की प्राकृतिक चिकित्सा



धर्मचन्द सरावगी

बवासीर
की
प्राकृतिक चिकित्सा

•

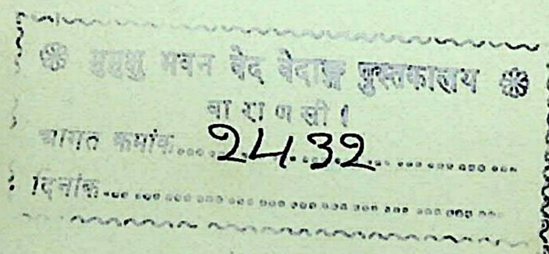
धर्मचन्द सरावगी

•

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक : सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन,
राजघाट वाराणसी-१
मुद्रक : शिवलाल प्रिन्टर्स,
नायक बाजार, वाराणसी
संस्करण : पहला
प्रतियाँ : ३,०००; अगस्त, १९७६

मूल्य
एक रुपये पचास पैसे



Title : BAVASEER KI PRAKRITIK CHIKITSA
Author : Dharmachand Saravagi
Subject : Nature Cure
SARVA-SEVA-SANGH-PRAKASHAN
RAJGHAT, VARANASI-1

प्रकाशकीय

कब्ज को सारे रोगों को नानी माना गया है। बवासीर रोग भी उसी की एक बढ़ी हुई शाखा है। इस रोग से पीड़ित लोगों की संख्या असंख्य है। किसी ने इस रोग को पैतृक विरासत में पाया है, किसी ने गलत खान-पान और रहन-सहन के चलते इसे स्वयं अर्जित किया है। पर आज संसार में इस रोग की यातना भोगनेवाले रोगियों की संख्या बहुत बड़ी है।

इस रोग के उपशम के लिए अनेक अंग्रेजी दवाएँ काम में लायी जाती हैं। शल्य क्रिया भी की जाती है। परन्तु कुछ दिन बाद रोगी पुनः पुराने कष्ट के चंगुल में फँस जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा बवासीर और कब्ज जैसे रोगों के मूल पर ही प्रहार करती है। प्राकृतिक जीवन ही वह संजीवनी है जिसके द्वारा रोगों से मुक्त होकर स्वास्थ्य का पूरा आनन्द उठाया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभवी उन्नायक श्री धर्मचन्द सरावगी ने बवासीर रोग के कारण, लक्षण प्रकार आदि का विवरण देते हुए इस पुस्तक में बताया हैं कि इस रोग के आक्रमण से किस प्रकार बचकर स्वास्थ्य का सम्पादन किया जा सकता है। पुस्तक ऐसी सरल भाषा में है कि हर कोई इससे पूरा लाभ उठा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी हमारा साहित्य बहुत लोकप्रिय हुआ है। हमारा विश्वास है कि उसी लड़ी की यह कड़ी भी लोकप्रिय होगी और इससे बवासीर रोग के रोगी पूरा लाभ उठाकर जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त करेंगे।

लेखक की ओर से

विज्ञान द्वारा नयी नयी औषधियों के आविष्कार के बावजूद देश विदेश में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार दिनोंदिन बढ़ रहा है, क्योंकि रोगी औषधियों से तंग आकर प्रकृति की शरण में आते और लाभ उठाकर जीवन भर इसके भक्त बन जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा कोई चिकित्सा नहीं, यह तो जीने की एक कला है। जो इसका मजा चख लेता है, फिर वह इसे कभी नहीं छोड़ता। विदेशों में प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत-सा साहित्य निकल चुका है, अब भी नित्य नया निकलता है। भारत में भी इस साहित्य की वृद्धि हो रही है, किन्तु उसकी प्रगति बहुत धीमी है।

प्राकृतिक चिकित्सा की विशेषता यह है कि उसमें रोग सब एक हैं, और उसकी चिकित्सा भी एक। रोगी हमेशा उतावला होता है। वह दूसरे रोगों की चिन्ता न कर अपने ही रोग के सम्बन्ध में ज्यादा से ज्यादा जानना चाहता है तथा जल्दी से जल्दी ठीक होने के लिए भी उत्सुक रहता है। इसलिए अंग्रेजी भाषा में हर एक रोग पर छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, जिन्हें रोगी मन लगाकर पढ़ता है और लाभ उठाता है।

कई वर्षों से मेरी इच्छा थी कि हिन्दी भाषा में भी हर प्रमुख रोग पर ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हों, जिनमें रोग के लक्षण, कारण और निवारण का विवरण विस्तारपूर्वक सरल भाषा में दिया जाय। ऐसी पुस्तकों का मूल्य भी अधिक न हो। इस सम्बन्ध में मैंने सर्व सेवा संघ के प्रकाशन विभाग से चर्चा की। वे मेरी बात से सहमत हुए। उसी के फलस्वरूप 'मोटापे की

प्राकृतिक चिकित्सा' के बाद यह आठवीं पुस्तक 'बवासीर की प्राकृतिक चिकित्सा' पाठकों के सामने है।

इस पुस्तक में मैंने जो कुछ लिखा है, वह कोई मेरा अनुसन्धान नहीं है। गत बीस-पचीस वर्षों में प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी जो देशी विदेशी साहित्य मैंने पढ़ा, प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रों में रोगियों पर प्राकृतिक उपचार देखे, साथही मैंने भी कई रोगियों पर यह चिकित्सा आजमायी, उसी आधार पर यह पुस्तक लिखी गयी है। आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे। यदि किसी बन्धु को कहीं कुछ सुझाव देने जैसा लगे तो निः-संकोच सूचित करें, जिससे दूसरे संस्करण में यथोचित सुधार हो सके।

—धर्मचन्द सरावगी

विषय-सूची

१. रोग-परिचय

बवासीर रोग कई नामों से विख्यात है, जैसे—'अर्श', 'मस्से', 'मोहके बवासीर' तथा अंग्रेजी में 'पाइल्स' व 'हीमोराइड्स'। भारत में कहीं-कहीं इस व्याधि को 'मूल व्याधि' के नाम से पुकारते हैं और कुछ जगहों में 'मूल शंका' के नाम से।

आधुनिक सभ्य समाज के लोगों में कोष्ठबद्धता और उसका अन्तिम परिणाम बवासीर, दोनों समान रूप से सामान्यत: देखने में आते हैं। पुराने जमाने में यह रोग केवल तीस प्रतिशत बूढ़ों में ही पाया जाता था, किन्तु आज तो यह रोग आमतौर पर युवकों और युवतियों में भी पाया जाने लगा है।

उदर-रोग

आयुर्वेद में उदर-रोग आठ प्रकार के माने गये हैं : (१) पित्तजनित, (२) कफजनित, (३) वायुजनित, (४) त्रिदोष-जनित, (५) प्लीहाजनित, (६) मलजनित, (७) क्षतजनित और (८) जल-संयमजनित। इनमें बवासीर मल-जनित एक कष्टदायक उदर-रोग है।

तीन बलियाँ

गुदा-द्वार के भीतर की तरफ ४½ अंगुल तक के स्थान में शंखावर्त्त की तरह तीन आवर्त होते हैं, जिन्हें बलि कहते हैं। भीतर की तरफ डेढ़ अंगुल परिमित पहली बलि का नाम प्रवाहिणी है। दूसरी बलि का नाम विसर्जनी है, जो पहली बलि

से डेढ़ अंगुल परिमित उसके नीचे होती है। उसके नीचे जो तीसरी बलि होती है, उसको **संवरणी** कहते हैं। ये तीनों बलियाँ शंख की बलियों के समान बल खाये हुए होती हैं। इन्हींका संयुक्त नाम **गुद** या **गुदा** है। इनसे बाहर शेष आधा अंगुल परिमित गुदा-द्वार के भाग को **गुदोष्ठ** कहते हैं।

प्रवाहिणी बलि का काम मल को प्रवाहित करना है।

विसर्जनी बलि मल को त्यागती है, जिसे 'शौच की हाजत होना' कहते हैं।

संवरणी बलि मल को इच्छानुसार रोकती है।

मस्से और उनके आकार-प्रकार

जीर्ण कोष्ठबद्धता के फलस्वरूप जब मल के भार से उपर्युक्त तीनों बलियाँ रोगाक्रान्त होती हैं, तो उनमें नाना प्रकार की आकृति के मांस के अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हीं को **बवासीर के मस्से** कहते हैं। मल-द्वार के बाहर जो मस्से होते हैं, उनको **बाहरी मस्से** तथा मल-द्वार के भीतर जो मस्से होते हैं, उनको **भीतरी मस्से** कहते हैं। इन मस्सों की संख्या का कोई निश्चित निर्देश नहीं किया जा सकता है। ये मस्से २ से लेकर ८-१० के गुच्छे के समान हो सकते हैं। मस्से बिना मुँह के फोड़ों या छोटी-छोटी गाँठों के रूप में होते हैं।

बवासीर के मस्से भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के होते हैं। जैसे,

१. छोटे-छोटे सख्त मसूर के या चने के दाने जैसे

२. लम्बे, नर्म, ऊपर लाल चपटे और नीचे बारीक सूत जैसे

३. मामूली सख्त

४. अलग-अलग लम्बे अंगूर की तरह

५. थोड़े सख्त, लम्बे खजूर की तरह

६. सफेद दर्द-रहित
७. गोल और चपटे अंजीर की तरह
८. खुरदुरे कदम्ब के फूल के समान
९. जोंक के मुख के समान, आदि।

आरम्भिक स्थिति

तकलीफ की आरम्भिक स्थिति में बवासीर के मस्सों में खुजली और जलन मामूली तौर पर होती है। फिर आगे चलकर मस्से बढ़कर मसूर के दानों, जौ के दानों, मटर के दानों या मुनक्कों के बराबर हो जाते हैं। ये मस्से जब फट जाते हैं तो इनसे रक्त निकलने लगता है। तब इसे **खूनी बवासीर** कहते हैं। रक्तहीन बवासीर को **बादी या सूखी बवासीर** कहते हैं। इस प्रकार की बवासीर से खून तो नहीं गिरता, परन्तु दर्द बहुत होता है।

अन्य रोगों का जनक

बवासीर स्वयं तो एक भयंकर रोग है ही, साथ ही यह कितने ही अन्य भयंकर रोगों को पैदा करनेवाला भी है। इस रोग से गुदभ्रंश, भगन्दर, बद्धगुदोदर, यकृतवृद्धि, कामला, रक्तक्षय तथा हाथ-पाँव में शोथ आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त में निद्रानाश होकर मस्तिष्क-विकृति की भी सम्भावना हो जाती है।

वृद्धावस्था में खूनी बवासीर की शिकायत जब अधिक दिनों तक ठहर जाती है, तो अक्सर वह कैंसर का रूप धारण कर लेती है। ●

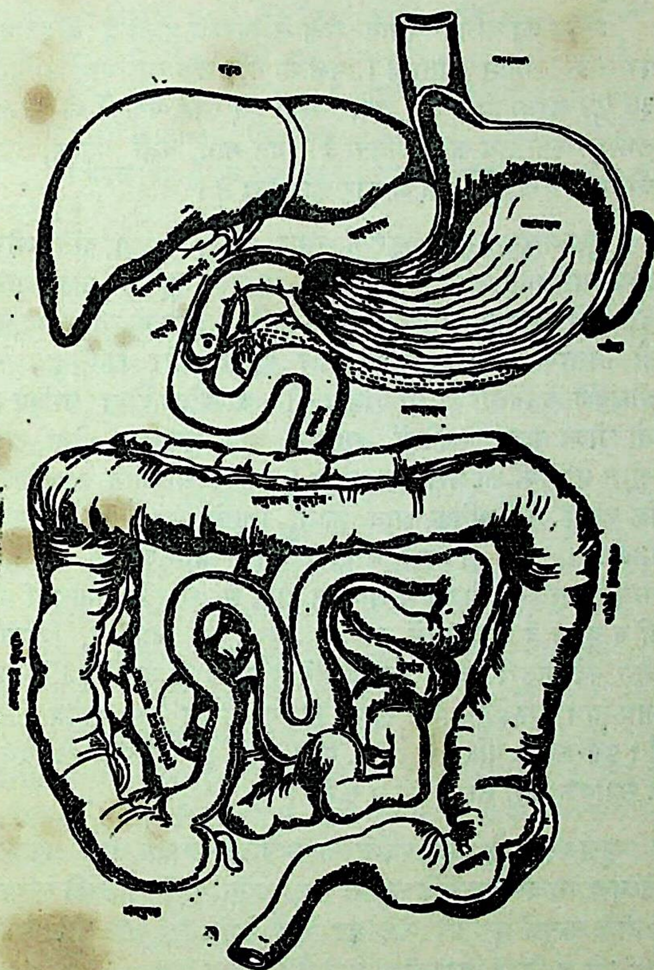
२. पाचन-प्रणाली एवं प्रक्रिया

बवासीर रोग का निदान तथा चिकित्सा निर्धारित करने से पहले उदर में स्थित सभी अंगों की रचना एवं प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए हम सबसे पहले इसी सम्बन्ध में विचार करेंगे।

पाचन-संस्थान

पाचन-संस्थान के अंगों में मुख्यतः निम्न अंग आते हैं :

१. मुख
२. गलकोष
३. अन्नवह-प्रणाली
४. वक्ष-उदर मध्यपेशी
५. आमाशय
६. पक्वाशय (ग्रहणी)
७. क्षुद्रान्त्र
८. यकृत
९. पित्ताशय
१०. अग्न्याशय (क्लोम)
११. प्लीहा
१२. बृहदान्त्र और उपान्त्र
१३. मलाशय एवं गुदा
१४. मलद्वार



पाचन-संस्थान

१. मुख

शरीर का पाचन-विभाग मुख से आरम्भ होता है और गुदा पर जाकर समाप्त होता है। मुख से गुदा तक का मार्ग लगभग ३० फुट लम्बा होता है। हमारे खाये हुए खाद्य-पदार्थों को इतना लम्बा रास्ता तय करना पड़ता है। यह मार्ग कहीं पतला, कहीं चौड़ा और कहीं थैले के आकार का होता है।

मुख-गह्वर : मुख-गह्वर में तालु, जीभ, जबड़ा, दाँत और ओष्ठ शामिल हैं। आँख और नाक को मुख-गह्वर के ठीक ऊपर बनाने से भगवान् का यह प्रयोजन है कि हमारा भोजन स्वाद के ही विचार से नहीं, अपितु चक्षु इन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय के आकर्षण के विचार से भी बढ़िया और प्राकृतिक होना चाहिए। जो भोज्य पदार्थ देखने में आकर्षक और सुगन्धित होगा, वह लाला ग्रन्थियों को उत्तेजित करेगा। उसका परिणाम यह होगा कि लाला का अधिक स्राव होगा, जिससे पाचन में सहायता मिलेगी। इतना ही नहीं, कानों के द्वारा मस्तिष्क को भोजन-सम्बन्धी सूचना मिलने से अपरोक्ष रीति से जठर के स्नायुओं में क्षोभ होता है और उनमें हलचल उत्पन्न हो जाती है, जिससे जठर की भीतरी त्वचा रक्त के दौरे से लाल हो जाती है। उसके साथ-साथ रस-ग्रन्थियों में क्षोभ होकर पाचक रस उत्पन्न होते हैं। इस कारण यदि हम आँख, कान, नाक को भी पाचन-इन्द्रिय के सहायक मानें तो गलती न करेंगे।

मुख-गह्वर से गुदा पर्यन्त सारा पाचन-विभाग एक प्रकार की मुलायम श्लैष्मिक झिल्ली से मढ़ा होता है। ओंठ की त्वचा के नीचे सम्पूर्ण मुख को घेरे हुए एक पेशी है, जो ओंठों को सिकोड़ने आदि में क्रियाशील होती है।

तालू : तालू का पिछला भाग नरम होता है। उसे कोमल

तालू कहते हैं। इसीमें गले के पास लटकता हुआ एक मांस का लोथड़ा-सा दिखाई पड़ता है, जिसे **घाँटी, अतिजिह्वा, शुंडिका** या **कौआ** कहते हैं। इससे एक प्रकार का रस निकलता है। कोमल तालू और ऊपर की दन्त-पंक्तियों के बीच **कठिन तालू** है। इससे भी आहार के स्वाद का कुछ ज्ञान होता है। कोमल तालू का कार्य यह है कि वह बिना चबाये आहार को आगे न बढ़ने दे।

जीभ : आहार का स्वाद लेने के लिए **जीभ** मुख्य इन्द्रिय है। उसे **रसना** या **जिह्वा** भी कहते हैं। खाद्य-पदार्थ जब जीभ और तालू के बीच में दबता है, तब रस की साधारण अनुभूति होती है। परन्तु जब उससे मुख-रस और लाला-रस का सम्मिश्रण होकर वह दाँतों, जीभ और कठिन तालू के योग से खूब चबाया जाता है, तब पूर्ण रस-ज्ञान होता है।

जीभ की रचना मांसमय स्नायु-तन्तुओं से हुई है। उसके ऊपर कँटीले चमड़े की एक खोल-सो चढ़ी हुई है। ये काँटे छोटे-बड़े कई प्रकार के होते हैं। जीभ का निचला भाग चिकना होता है। उसमें बहुत-सी रक्तवाहिनी नसें फैली दिखाई देती हैं।

दाँत : मुख-गह्वर में दाँतों का बड़ा महत्त्व है। ये सख्त हड्डी के बने होते हैं, पर भीतर से खोखले होते हैं। दाँतों के इस पोले भाग को **दन्तकोष** कहते हैं, जिसमें **दन्तमज्जा** नाम की एक मुलायम चीज भरी होतो है। चूँकि दाँतों की हड्डियाँ एक तरह से खुली-सो होती हैं, इसलिए वायु आदि को तथा भिन्न-भिन्न आहार-द्रव्यों का असर रोकने के लिए उनके ऊपरवाले भाग के बाहरी हिस्से पर एक सफेद परत लगी रहती है, जिसे **एनामेल** कहते हैं। दाँत के इस हिस्से में स्पर्श-ज्ञान नहीं होता। दाँत की जड़ का बाह्य भाग अस्थिमय अस्तर से तथा शेष भीतरी भाग **डेन्टीन** से बना है। प्रत्येक दाँत की जड़ के सिरे पर बारीक छेद

होता है। उससे पोषण तथा चैतन्यता के लिए रक्त-नलिका और मज्जातन्तु भीतर जाते हैं। दाँत के भीतरी सूक्ष्म नलीदार भाग में स्पर्श-ज्ञान होता है। इसीमें दाँतों के रोग होने पर वेदना होती है। दाँत के पोले स्थान तक रोग के पहुँच जाने पर भयंकर वेदना होती है। दाँत का **डेन्टीन** वाला भाग ही उसका मुख्यांश होता है। उसके नीचे सीमेंट होता है जो जो **पाल्या** नाम के पदार्थ को ढँके रहता है। ऊपर और नीचे के जबड़ों में दाँत मजबूती से सोलह की संख्या में जमकर बैठे रहते हैं। ऊपर और नीचे के जबड़े के अन्त में १८ से २५ वर्ष की उम्र में जो दाढ़ जमती है, उसे **अक्ल की दाढ़** कहते हैं। प्रत्येक जबड़े में ५–५ दाढ़ें होती हैं, जो चबाने का काम करती हैं। ये **चर्बण दन्त** कहलाते हैं। उनके पास ही एक-एक **वेधक दंत** कुत्ते के दाँतों के समान नुकीले होते हैं। इनसे पदार्थ फाड़े जाते हैं। प्रत्येक जबड़े में चार-चार **वेधक दन्त** होते हैं। ये तेज होते हैं और पदार्थ में छेद करने के काम में आते हैं। प्रत्येक जबड़े में चार-चार दाँत सामने होते हैं, जो पकड़ने और तोड़ने का काम करते हैं। दाँतों में जो भाग मसूढ़ों के ऊपर रहते हैं, उन्हें **दन्तग्रीवा** तथा जो नीचे रहते हैं उन्हें **दन्तमूल** कहते हैं।

मनुष्यों में एक बार दूध के दाँत गिरकर फिर पक्के दाँत निकलते हैं, जो अधिक समय तक रहते हैं। इनके गिरने पर फिर नये दाँत नहीं निकलते। दूध के दाँत ५ महीने से लेकर २-३ वर्ष तक निकल आते हैं। दस वर्ष से बारह वर्ष की उम्र होते-होते दूध के दाँत टूटकर गिर जाते हैं और उनकी जगह पक्के दाँत निकल आते हैं।

चबाने के काम के अतिरिक्त वर्णों का शुद्ध उच्चारण तथा मुखमण्डल की सुडौलता और सुन्दरता भी दाँतों के सुन्दर स्वास्थ्य पर ही निर्भर करती है।

जबड़े : जबड़े दो हैं। ऊपरी जबड़े को ऊर्ध्वहनु तथा नीचे के जबड़े को अधोहनु कहते हैं। 'ऊर्ध्वहनु' में दो हड्डियाँ होती हैं, जो एक-दूसरे से मध्यस्थ रेखा में जुड़ी होती हैं। इन दोनों के बीच का भाग नाक के पोलेपन का भाग है। जबड़े के निम्न अंश में दाँतों के लिए घर बने रहते हैं। जबड़ों के आपस में जुड़े रहने के कारण मुख के कठिन तालू का अग्रभाग तैयार होता है। नीचे के जबड़े के अगले अंग का एक हिस्सा ऊपर जाकर कान की हड्डी में जुड़ा होता है। ऊपरी जबड़े के पास दो छोटी-छोटी कोमल हड्डियाँ आँखों के भीतरी कोनों से मिलती हैं। यहाँ से आँख का पानी नाक में उतरता है। कोई कड़ुआ पदार्थ खाने पर इसी मार्ग द्वारा नाक से पानी बहने लगता है। भोजन करते समय इन जबड़ों में हरकत होती है, जिससे लाला-ग्रन्थियों से लार छूटने लगती है।

ओठ : ओठों का काम मुख-गह्वर की सुडौलता बनाये रखना है और भीतर की चीजों को बाहर आने देने से रोकना है। ऊपर के ओंठ में मर्दों को मूँछ निकलती है और नीचे के ओठ के बीच से दाढ़ी का आरम्भ होता है।

लाला-रस : मुख में लार-ग्रन्थियों से लाला-रस स्रवित होता रहता है। यह रस भोजन के पाचन के लिए महत्त्वपूर्ण है। भोजन जितना ही अधिक चबाया जायगा, यह रस उतना ही अधिक स्रवित होगा। यह रस क्षारीय होता है। इसमें कई प्रकार के क्षारीय लवण रस घुले-मिले रहते हैं। लाला पहला पाचक-रस है, जो भोजन में मिलता है। इसका काम भोजन को गोला और मुलायम बनाना होता है। वह उसके श्वेतसार को शर्करा में बदलता है। यह स्राव रंगहीन, किंचित् लसदार तथा तरल होता है। इसका गुरुत्व १००२ से १००६ तक होता है। इसमें ४२ प्रतिशत जल तथा शेष ५८ प्रतिशत ठोस द्रव्य होते हैं। आहार

का परिपूर्ण चर्वण होने से लाला स्राव उसमें मिल जाता है। इस प्रक्रिया से स्वाद-ग्रन्थियों को भी उत्तेजना मिलती है, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण पाचन-क्रिया पर होता है। भली प्रकार चबाने से आहार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, जिससे आगे चलकर पाचन-प्रणाली में अन्य प्रकार के रसों का उस पर पूरा प्रभाव हो पाता है।

२. गलकोष

यह मुख-गह्वर के पीछे होता है। यहीं से अन्नवह-प्रणाली शुरू होती है। इसके पास ही दो नासारन्ध्र, दो कर्ण-नलिकाओं के द्वार, एक श्वास नलिका, एक गल-द्वार और एक अन्नवह-प्रणाली-'द्वार स्थित होने से इसका नाम **सप्तपथ** भी है। साँस लेने में गलकोष के पिछले हिस्से और कोमल तालू में जो छेद रहता है, उसीको **श्वास-नलिका** कहते हैं। उसीसे वायु बाहर और भीतर आती-जाती है। लेकिन बोलने और भोजन करने के समय कोमल तालू गलकोष के ऊपरी भाग को पूरी तरह से ढँक लेता है, जिससे हवा या भोजन कुछ भी ऊपर न जा सके। नाक से बोलने-वालों के कोमल तालू में दोष होता है, शायद उसमें छेद हो जाता है, जिससे बोलने के समय कुछ हवा निकल जाती है और उनकी बोली दोषपूर्ण हो जाती है। भोजन में जल्दबाजी करने से अन्न का कुछ भाग जब श्वास-नलिका और नासारन्ध्र में चला जाता है तो खाँसी आ जाती है और कष्ट होता है।

३. अन्नवह-प्रणाली

इसको **गलनाली** भी कहते हैं। इसकी लम्बाई लगभग १० इंच होती है। इसका ऊपरी भाग मुख से तथा नीचे का भाग आमाशय से जुड़ा रहता है। इस नाली से भोजन आमाशय में पहुँचता है। जब भोजन का ग्रास मुख से 'गलनाली' के अन्दर प्रवेश करता है, तो 'गलनाली' स्थित मांस-पेशियों में संकोचन-

क्रिया होने से वह आगे बढ़ता है। मांस-पेशियों की संकोचन-क्रिया गलकोष से गुदापर्यन्त होते रहने से ही पाचन-क्रिया सुसम्पन्न होती है।

अन्नवह-प्रणाली की दीवारें मांस सौत्रिक तन्तु की बनी हुई हैं। उसके भीतरी भाग पर श्लैष्मिक कला होती है। श्लैष्मिक कला में लम्बाई में सलवटें पड़ी रहती हैं। नाली के ऊपर के भाग में ऐच्छिक मांस होता है और नीचे के भाग में अनैच्छिक मांस होता है। इसमें किसी प्रकार का पाचक रस नहीं बनता। इसका काम केवल भोजन को कण्ठ से आमाशय तक पहुँचाना होता है।

४. वक्ष-उदर मध्यपेशी

पेट और छाती के बीचोंबीच रेशेदार और मांसल झिल्ली का एक पटल या पर्दा होता है, जिसे **महाप्राचीर पर्दा** या **वक्ष-उदर मध्यपेशी** कहते हैं। इसका ऊपरी भाग छाती कहलाता है, जिसमें दिल, फेफड़े, धमनी, रुधिरामिश्रण यन्त्र तथा भोजन और श्वास-नली आदि होती है। नीचे का भाग **पेट या उदर** कहलाता है। इसमें **यकृत, तिल्ली, पित्ताशय** तथा **छोटी और बड़ी आँतें** आदि होती हैं। **गुर्दे** इसी भाग में, किन्तु पीछे की ओर होते हैं। स्त्रियों का **गर्भाशय** और मर्दों का **शुक्राशय** भी इसी भाग में होता है। यह महाप्राचीर पर्दा हमारे साँस खींचने के समय उठता है और छोड़ने के समय नीचे आता है। इस प्रकार यह सदैव उदर पर और उसके अन्दर स्थित पाचन-यन्त्रों पर प्रभाव डालता रहता है।

५. आमाशय

इसे **पाकस्थली** और **कोष्ठ** भी कहते हैं। यह उदर के बायें भाग में थैली के रूप में रहता है। इसका बायाँ भाग दाहिने की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। इसका आकार मशक से बहुत कुछ मिलता-

जुलता है। इसकी लम्बाई १२-१३ इंच और चौड़ाई ४ इंच के लगभग होती है। आमाशय के दो पृष्ठ होते हैं, एक सामने को ओर और दूसरा ऊपर की ओर। इसके दो द्वार होते हैं। एक द्वार ऊपर हृदय के पास अन्नवह-प्रणाली से मिलता है। इसे हृदय-द्वार कहते हैं। दूसरा नीचे पक्वाशय से मिलता है, जिसे पक्वाशयिक द्वार कहते हैं आमाशय का वजन डेढ़ सेर के लगभग होता है। इसकी दीवार श्लैष्मिक मांस और सौत्रिक तन्तुओं की होती है। मांस कई तहों में होता है। भीतरी भाग पर श्लैष्मिक कला रहती है, जिसमें अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्म नलाकार ग्रन्थियाँ रहती हैं। आमाशय के बाहरी भाग पर एक पतली झिल्ली रहती है। 'पक्वाशयिक द्वार' पर मांस की मोटी तह होती है, जो भोजन जाते समय खुल जाती है, अन्यथा बन्द रहती है। श्लैष्मिक कला में लम्बाई के रूप में सलवटें पड़ी रहती हैं। खाली आमाशय में रक्त कम होने से इसका रंग हल्का पीला हो जाता है, पर भोजनावस्था में रक्ताधिक्य के कारण वह लाल रंग का हो जाता है।

आमाशय की श्लैष्मिक कला की नलाकार ग्रन्थियों की दीवारों में दो प्रकार की सेलें होती हैं: एक स्तम्भाकार, दूसरी बड़ी और मोटी मीगीवाली। ये अम्लोत्पादक सेलें कहलाती हैं। ये सेलें चौड़े भाग में अधिक होती हैं। इनसे अम्लरस उत्पन्न होता है, जिससे आहार के पाचन और मन्थन में सहायता मिलती है और आमाशयिक रस का उत्पादन होता है। यह आमाशयिक रस कुछ खट्टा, कुछ नमकीन, पतला और मांड जैसा होता है। आमाशय के रस के बनने में लगभग आधा घण्टा लगता है और उसे आमाशय से आँतों में जाने में एक से लेकर पाँच घण्टे तक लगते हैं।

आमाशय में आमाशय के रस के अलावा पेप्सीन और रेनेट नामक दो विशेष पदार्थ भी होते हैं। आमाशय-रस में विशेष गंध

आती है। इसका विशेष गुरुत्व लगभग १००२ होता है। इस रस में किसी प्रकार के कीटाणु जीवित नहीं रह सकते। यदि यह रस अधिक अम्ल हो जाय तो अम्लपित्त नामक व्याधि हो जाती है।

जो भोजन मुख में कम चबाया जाता है या अधिक वसामय होता है, उसे पचाने में आमाशय को अधिक श्रम और समय लगाना पड़ता है। आमाशय का अम्ल-रस पृथक्-पृथक् पदार्थों पर पृथक्-पृथक् प्रभाव डालता है। वह दूध को दही का रूप देता है। प्रोटीन का थोड़ा विश्लेषण करता है। अर्द्धपचित प्रोटीनें पक्वाशय में चली जाती हैं। कुछेक तत्त्व श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में मिल जाते हैं। शेष सब अर्धपक्व रूप में धीरे-धीरे पक्वाशय में चले जाते हैं, जहाँ **सर्वक्लिण्व रस** तथा **पित्त** के प्रभाव से आहार द्रव्यों के बड़े समूहों का भेदन अथवा पाचन होता है।

अर्धपक्व रूप में जो आहार आमाशय से पक्वाशय में जाता है, उसे **आम** या **आँव** कहते हैं। आम के साथ **उदनोरिक अम्ल** भी पक्वाशय (ग्रहणी) में प्रवेश पाता है, जो अपनी अमलीय प्रक्रिया द्वारा पक्वाशय में निकलनेवाले पाचक रसों के स्राव को उत्तेजित करता है। सामान्यतः मनुष्यों में भोजन के बाद ५ घण्टों के अन्दर सम्पूर्ण आहार आमाशय से पक्वाशय में चला जाता है। जल और तरल पदार्थ अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक निकल जाते हैं। उसके बाद कार्बोहाइड्रेटवाले आहार निकलते हैं। प्रोटीन एवं बसावाले आहार सबके बाद में निकलते हैं।

६. पक्वाशय (ग्रहणी)

जहाँ से छोटी आँत आरम्भ होती है, वह **पक्वाशय** कहलाता है। इसकी लम्बाई ८ या १० इंच होती है। आमाशय की तरह इसमें भी चार स्तर होते हैं। पक्वाशय में पित्त और क्लोम ग्रन्थि

की नलियाँ मिलती हैं, जिनके द्वारा **पित्त रस** और **क्लोम रस** आकर भोजन में मिलते हैं। तत्पश्चात् भोज्य पदार्थ का अवशिष्ट भाग, जो आमाशय में पचने से बच रहता है, वहाँ पर पाचन के लिए खूब मथा जाता है।

७. क्षुद्रान्त्र

यह आँत २२ फुट लम्बी होती है। इसका व्यास सवा इंच से पौने दो इंच होता है। यह उदर में सर्पाकार गेंडुली की तरह पड़ी रहती है। इसके नीचे का सिरा **बृहदान्त्र** से जुड़ा रहता है। इसकी चौड़ाई बृहदान्त्र से कम, परन्तु लम्बाई चौगुनी होती है। इसकी दीवार की बनावट आमाशय की दीवार की बनावट जैसी ही है। इसमें सेलें चौड़ाई के रुख में रहती हैं। मांस और श्लैष्मिक कला के बीच सौत्रिक तन्तु की एक तह रहती है, जिसमें कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं। श्लैष्मिक कला में मिली एक पतली तह अनैच्छिक मांस की होती है। श्लैष्मिक कला में नलाकार ग्रन्थियों के मध्य में बहुत से बाल सदृश बारीक उभार होते हैं। ये उभार **ग्राहकांकुर** कहलाते हैं। एक वर्गइंच कला में कोई १२००० 'ग्राहकांकुर' होते हैं। इन अंकुरों की लम्बाई $\frac{१}{४८}$ से $\frac{१}{८}$ इंच होती है। ये अंकुर केवल क्षुद्रान्त्र में ही होते हैं। आमाशय तथा बृहदान्त्र में नहीं होते। 'ग्राहकांकुर' के अन्दर एक बड़ी लसिका-वाहिनी रहती है, जिसके चारों तरफ कुछ सेलें, रक्तकेशिकाएँ और अनैच्छिक मांस रहता है। इस अनैच्छिक मांस से ही 'ग्राहकांकुर' बहुधा हिला करता है। पक्वाशय सौत्रिक तन्तु में बहुत-सी विशेष प्रकार की कोष्ठाकार ग्रन्थियाँ होती हैं, जो क्षुद्रान्त्र में नहीं होतीं।

क्षुद्रान्त्र के निचले भाग की दीवार में कुछ **विशेष ग्रन्थियाँ** होती हैं। इनकी लम्बाई आधी इंच से ४ इंच और चौड़ाई आधी

इंच होती है। यह ग्रन्थि-समूह श्लैष्मिक कला के नीचे होता है तथा वहाँ ग्राहकांकुर नहीं होते। कुल आन्त्र में इनकी संख्या २० से ३० तक होती है। आन्त्रिक ज्वर में इन ग्रन्थियों का ही प्रदाह होता है और इनमें घाव हो जाते हैं। आन्त्र-क्षय में भी ऐसा ही होता है।

इन ग्रन्थियों में बननेवाले रस को **क्षुद्रान्त्रीय रस** कहते हैं। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इस रस में कई विशेष गुणीय पदार्थ होते हैं। जैसे,

१. क्लोमोत्तेजक पदार्थ : यह पदार्थ रक्त द्वारा क्लोम में पहुँचता है, जिससे क्लोम बड़ी तेजी से अपना रस बनाने लगता है।

२. शर्करा परिवर्तक पदार्थ : इसकी क्रिया द्वारा सब प्रकार की शर्करा से अंगूरी शर्करा बन जाती है।

३. प्रोटीन विश्लेषक : यह प्रोटीन का विश्लेषण करता है।

आन्त्र की दीवार के संकोचन और प्रसार से आन्त्र में सदैव गति हुआ करती है, जिससे पहले तो पाचक रस भोजन में मिल जाता है और फिर दीवार के दबाव के कारण आहार रस धीरे-धीरे नीचे को सरकता रहता है। जैसे-जैसे आहार रस नीचे को जाता है, पाचक रसों की क्रिया उस पर होती रहती है और पचनीय पदार्थ पचकर तथा श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त और लसिका में पहुँच जाते हैं। शेष भाग बृहदान्त्र में चला जाता है।

बृहदान्त्र तक पहुँचते-पहुँचते पचा हुआ भोजन प्रचूषित हो चुका रहता है। बृहदान्त्र में केवल मलभाग रहता है, पर जलीय अंश का प्रचूषण वहाँ भी होता रहता है। भोजन को क्षुद्रान्त्र से बृहदान्त्र तक पहुँचने में साधारणतः ५ से ८ घण्टों का समय

लगता है। अतिसार आदि विकारों में यह समय बहुत कम हो जाता है।

बस्ति के दाहिने भाग में, जहाँ क्षुद्रान्त्र बृहदान्त्र से मिलती है, उसे इलियम कहते हैं, शेष बीच का भाग जेज्युनम कहलाता है। 'इलियम' के स्थान पर श्लेष्मावरणवाले दो पर्दे होते हैं, जिनसे होकर क्षुद्रान्त्र के पदार्थ बृहदान्त्र में जाते हैं। इनकी बनावट ऐसी होती है कि एक बार क्षुद्रान्त्र से जो पदार्थ बृहदान्त्र में गया, वह सहज ही फिर क्षुद्रान्त्र में लौटकर नहीं आ सकता।

८. यकृत

यकृत शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि है। यह उदर में वक्ष-उदर मध्यस्थ पेशी के नीचे पसलियों की आड़ में होता है। इसका कुछ भाग आमाशय तक रहता है। वक्ष में इसके ऊपर दाहिना फेफड़ा तथा कुछ भाग हृदय का रहता है। स्वस्थ होने पर यकृत पसलियों की आड़ में रहता है, परन्तु रोगी होने पर यह बड़ा होकर पसलियों से बाहर निकल आता है। इसका वजन लगभग पौन सेर होता है। इसका गुरुत्व १००५ से १००६ होता है। यह गहरा सुर्खी मायल, भूरा तथा स्पर्श करने पर मुलायम और मृदु, परन्तु ठोस होता है।

इसकी लम्बाई ८ से १० इंच, ऊँचाई ६ से ७ इंच तथा चौड़ाई ४ इंच होती है। यकृत के नीचें का भाग सर्वाधिक चौड़ा और बड़ा होता है तथा शेष भागों की अपेक्षा सपाट होता है। शेष भाग उभरे हुए होते हैं। नीचे के भाग में ५ गड्ढे होते हैं। एक गड्ढे में पित्ताशय रहता है। पित्ताशय की बायीं ओर एक गड्ढे में यकृत का गोल बंधन रहता है। पित्ताशय और गोल बंधन के गड्ढे पीछे जाकर एक चौड़े और गहरे गड्ढे में जा मिलते हैं। इस गड्ढे को यकृत द्वार कहते हैं। इस स्थान पर

यकृत की धमनी, संयुक्ता शिरा तथा कुछ नाड़ियाँ अन्दर घुसती हैं और पित्त-स्रोत बाहर निकलते हैं। यकृत द्वार के पीछे दो गड्ढे और होते हैं। एक में **अधोगा महाशिरा** रहती है। यकृत की शिराएँ इसी गड्ढे में अधोगा महाशिरा में जुड़ी होती हैं। दूसरा गड्ढा कम गहरा होता है। इसमें स्त्रियों की गर्भावस्था में **नाभि शिरा** की एक शाखा रहा करती है। जब बच्चा पैदा हो जाता है, तब इसमें रक्त नहीं रहता और यह सूखकर रज्जुवत् हो जाती है। इस गड्ढे के मध्यस्थ भागों को **यकृत खण्ड** कहते हैं। यकृत में बननेवाले रस को **पाचक पित्त** कहते हैं। यह पीलापन लिये हुए हरे रंग का क्षारीय प्रतिक्रियावाला कड़ुआ द्रव होता है। इस रस का गुरुत्व १०२६ से १०३२ तक होता है। इसमें कई प्रकार के लवण घुले होते हैं। यकृत से दो नलियाँ निकलती हैं। एक दाहिने भाग से और दूसरी बायें भाग से। ये **पित्त-स्रोत** कहलाते हैं। यकृत-द्वार पर ये दोनों पित्त-स्रोत एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और **संयुक्त पित्तस्रोत** बन जाता है। संयुक्त पित्त-स्रोत और पित्ताशयिक नली के मिलने से **पित्त-प्रणाली** बनती है, जिसके द्वारा पित्त पित्ताशय में पहुँचता है।

पित्त से मिलकर क्लोम-रस अपनी क्रियाओं में प्रबल हो जाते हैं और उनकी विश्लेषण-शक्ति बढ़ जाती है। वसा के पचाने और आत्मीकरण के लिए पित्त अत्यधिक आवश्यक है। आमाशय में आये हुए अम्ल प्रतिक्रियावाले आहार-रस की अम्लता, क्षारीय पित्त और क्लोम रस के क्षार से जाती रहती है। आन्त्र में पित्त के रहने से सड़न कम होती है। जब आन्त्र में पित्त नहीं पहुँचता, तब सड़न अधिक होकर विष्ठा में बदबू आने लगती है। पित्त-रस की कमी से भोजन का पाचन ठीक से नहीं होता।

९. पित्ताशय

यकृत की दाहिनी ओर नीचे नवीं पसली के पास गाजर के

२

समान एक चमड़े की थैली जुड़ी होती है, इसे पित्ताशय कहते हैं। यह दरअसल यकृत का ही एक भाग होता है। यकृत में बना पित्त इसीमें आकर जमा होता है। यकृत प्रतिदिन डेढ़-दो सेर पित्त तैयार करता है। इसमें से थोड़ा पाचन क्रिया में खर्च होता है, कुछ बाहर निकल जाता है और अधिक भाग शरीर में पुनः जज्ब हो जाता है।

१०. अग्न्याशय (क्लोम)

यकृत की बायीं ओर आमाशय के पीछे क्लोम होता है, जिसमें एक नली निकलकर **क्लोम-रस** को पक्वाशय में पहुँचाती है, जिससे चिकनी और लसदार चीजें घुलती हैं। क्लोम की लम्बाई ५–६ इंच और वजन एक–डेढ़ छटाक होता है। यह पिस्तौल के आकार का होता है। क्लोम-रस स्वच्छ, पतला और क्षारीय होता है। छोटी आँत में भोजन जब एक फुट भी आगे वढ़ने नहीं पाता, तभी उसमें पित्त और क्लोम, दोनों ही प्रकार के रस आकर मिल जाते हैं।

क्लोम-रस शरीर के अन्दर चार कार्य करता है : (१) भोजन के प्रोटीन भाग का विश्लेषण करना और घोलना, (२) श्वेतसार का विश्लेषण करना, (३) स्नेहयुक्त पदार्थों का पाचन करना और (४) पिये हुए दूध को जमा देना।

११. प्लीहा

दाहिनी कोख में जिस तरह यकृत होता है, उसी तरह बायीं कोख में ऊपर की तरफ प्लीहा होती है। इसके पीछे नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं पसली होती है। आगे की ओर आमाशय होता है, जिसकी पूँछ का सिरा इसके ऊपर तक पहुँच जाता है। गुर्दे और आँतें इससे मिली रहती हैं। इसकी लम्बाई ५ इंच के लगभग

होती है। इसका रंग बैंगनी और वजन ३ छटाँक के करीब होता है। यकृत की तरह इसमें अगणित रन्ध्र होते हैं। यह जब बढ़ती है, तो बायीं ओर पसली के नीचे टटोलने से मालूम पड़ती है। संचारी रक्त का बड़ा भाग प्लीहा में संचित रहता है। जिस समय यह संकुचित होती है, उस समय इसमें का रस आँतों में चला जाता है। पाचन-क्रिया चालू रहते समय यह संकुचित रहती है।

रोग से उत्पन्न हुए विषों को नष्ट करना, भोजन के पाचन में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होना, रक्त के श्वेत कणों का निर्माण करना तथा अनावश्यक लाल कणों को नष्ट करना आदि प्लीहा के प्रमुख कार्य हैं।

१२. बृहदान्त्र और उपान्त्र

यह आँत चौड़ाई में तो क्षुद्रान्त्र से बड़ी होती है, पर लम्बाई में केवल ५ फुट ही होती है। यह क्षुद्रान्त्र को एक प्रकार से घेरे रहती है। यह आरम्भ में मोटी होती है, लेकिन बाद में धीरे-धीरे पतली होकर गुदा नलिका से जा मिलती है। इनके तीन भाग होते हैं :

१. ऊर्ध्वगामी : यह भाग ऊपर गह्वर में दाहिनी ओर नीचे से आरम्भ होकर यकृत के नीचे तक जाता है। यह भाग हर जगह से अधिक चौड़ा होता है।

२. अनुप्रस्थ : यह भाग बायें मुड़कर यकृत और पाकस्थली तक जाता है और नाभि से होता हुआ प्लीहा तक पहुँचता है।

३. अधोगामी : यह भाग प्लीहा से नीचे होकर उदर गह्वर की बायीं ओर गुदा तक उतर जाता है।

बृहदान्त्र के ऊर्ध्वगामी तथा अनुप्रस्थ भागों में भोजन के पोषक पदार्थों के शोषण का केवल षष्ठांश का कार्य होता है। शेष कार्य

पहले ही क्षुद्रान्त्र में हो चुका रहता है। बृहदान्त्र की गति क्षुद्रान्त्र से धीमी होती है। इस आँत की भी दीवार के मांस के संकोचन से उसमें गति पैदा हुआ करती है, जिससे भोज्य पदार्थों का शेष भाग पेडू की ओर आता है। पेडू में स्थित पेशियाँ भी मलाशय तथा मल-नाली पर यथेष्ट प्रभाव डालती हैं। बृहदान्त्र में अवशिष्ट आहारीय भाग का जल भाग सोखा जाता है। जल भाग पेशाब बनने के लिए मूत्राशय में जाता है और बचा हुआ मल गुदा-मार्ग द्वारा निकल जाता है।

उपान्त्र : बृहदान्त्र के ऊर्ध्वगामी भाग में उपान्त्र-नली जुड़ी रहती है, जिसकी लम्बाई एक से साढ़े सात इंच तक होती है। यह थैली जैसा होता है। इसे अन्त्रपुच्छ भी कहते हैं। इसकी रचना दीवाल की बनावट जैसी होती है। अन्तर यह होता है कि श्लैष्मिक कला और मांस के बीच में जो सौत्रिक तन्तु है, उसमें बहुत से लसिकाणुओं जैसे सेलों के समूह होते हैं। श्लैष्मिक कला में ग्रन्थियाँ बहुत कम होती हैं।

१३. मलाशय एवं गुदा

बृहदान्त्र के अधोगामी भाग का ५-६ इंच का निचला भाग दो हिस्सों में विभक्त है। मल-द्वार से एक-डेढ़ इंच लम्बा भाग 'गुदा' तथा दूसरा गुदा के ऊपर का ४-५ इंच लम्बा भाग 'मलाशय' कहलाता है।

१४. मलद्वार

मलद्वार से होकर ही मल बृहदान्त्र से बाहर निकलता है।

पाचन-प्रणाली के अन्तिम छोर, इसी मल-द्वार में बवासीर रोग उत्पन्न होता है।

३. बवासीर के कारण

बवासीर रोग की उत्पत्ति के अनेक कारण हैं। यहाँ हम उन पर विचार करेंगे।

१. कब्ज

सभी स्वास्थ्य-विशेषज्ञ एवं विद्वान् इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि बवासीर-रोग का एक प्रबल एवं प्रमुख कारण है—कब्ज।

आज के युग में ८० प्रतिशत मनुष्य कब्ज से पीड़ित हैं, परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षण किया जाय तो ८० प्रतिशत ही नहीं, बल्कि शत प्रतिशत व्यक्ति कब्ज के शिकार मिलेंगे। कब्ज के रोगी प्राय: अपने कब्ज-रोग से उदासीन-से रहते हैं और उस पर ध्यान नहीं देते। बहुत से लोग तो कब्ज को रोग ही नहीं मानते, लेकिन वे ही लोग जब पुराने कब्ज के फलस्वरूप बवासीर जैसे भयंकर रोग के चंगुल में फँसकर डॉक्टर के पास उसके निराकरण के लिए पहुँचते हैं तो स्वीकार करते हैं कि उन्हें पिछले दस-बीस वर्षों से कब्ज रहता रहा है; पर जब वे इस तथ्य को मंजूर करते हैं तब बहुत देर हो गयी रहती है।

पुराना कब्ज : यदि मनुष्य को कब्ज की शिकायत न रहे तो उसे बवासीर रोग कभी नहीं हो सकता। खान-पान की गड़बड़ी और असंयमी जीवन बिताने से सबसे पहले पाचन-क्रिया विकृत होती है। उसके बाद कब्ज उत्पन्न होता है। लम्बे समय

तक कब्ज रहने के बाद गुदा-द्वार के भीतर या बाहर बवासीर के मस्से प्रकट होकर दुःख देने लगते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि बवासीर खुद एक स्वतन्त्र रोग न होकर, पुराने कब्ज का एक लक्षण मात्र है।

कब्ज के लक्षण : मुख द्वारा लिये गये भोजन का उचित ढंग से १८ घण्टों में गुदा-मार्ग द्वारा निस्सरण न होना, मल-त्याग करने पर भी पेट में 'गुड़-गुड़' का शब्द होना या मल-त्याग करने की इच्छा बनी रहना, दिन में कई बार शौच जाना, आँतों में मल का सूख जाना, मल से अत्यधिक दुर्गन्ध आना, भोजन करने की इच्छा न होना, पेट के निचले भाग का भारी रहना, पेट का कोई अन्य रोग होना, कभी कठोर मल और कभी पतला मल निकलना, मन में ग्लानि, आलस्य भाव, ज्वर भाव, अरुचि आदि का बना रहना, मुँह से जल तथा दुर्गन्ध आना तथा चिड़चिड़ी प्रकृति आदि कब्ज के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सामान्य लक्षण हैं। जब इनमें से एक या कई लक्षण आपके शरीर में दृष्टिगोचर हों तो समझ जाइये कि आपको बवासीर रोग होनेवाला है या हो गया है।

कब्ज के कारण : यदि आप शारीरिक परिश्रम से जी चुराते हैं; एक स्थान पर निकम्मे बने बैठे रहते हैं; किसी कठोर स्थान पर अधिक देर तक बैठे रहते हैं; दिमागी काम अधिक करते हैं; गरिष्ठ गुरुपाकी चीजों का सेवन करते हैं; काफी, चाय अधिक पीते हैं; क्रोध, शोक, चिन्ता, भय आदि मानसिक रोगों के शिकार हैं; स्वास्थ्य के साधारण नियमों का पालन नहीं करते हैं; आहार-विहार में संयम नहीं बरतते; रात्रि में जागरण करते हैं; सायकिल-सवारी अधिक करते हैं; भोजन में हरी शाक-सब्जियाँ तथा फल यथेष्ट मात्रा में नहीं लेते हैं; भोजन करने के तुरन्त बाद ही मैथुन करते हैं; दौड़ते हैं या कोई भारी शारीरिक या मानसिक कार्य करते

हैं; किसी प्रकार का नशा करते हैं; अप्राकृतिक भोजन करते हैं; बिना भूख के भोजन करते हैं; मलोत्सर्ग की आवश्यकता को रोकते हैं; जल कम पीते हैं तथा नियमित रूप से रोज कोई व्यायाम नहीं करते—तो यह निश्चय जान लीजिये कि आपको कब्ज का रोग तो होगा ही, साथ ही आप ववासीर रोग से भी बच नहीं सकते।

२. गुद-स्थान की शिराओं पर अनावश्यक दबाव

मल मार्ग और मल-द्वार के क्षेत्र में शिराओं का जाल-सा बिछा रहता है। इनका यकृत की नलिकाओं और रक्त-संस्थान से सीधा सम्बन्ध रहता है। यकृत की नलिकाएँ बड़े महत्त्व का कार्य सम्पादन करती हैं। वे आहार से युक्त रक्त को आँतों में से एकत्र कर यकृत की ओर पहुँचाया करती हैं। शिराओं में के सारे रक्त को गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के विरुद्ध हृदय की ओर ऊपर जाना पड़ता है। इस कार्य में उदर की पेशियाँ और श्वसन को क्रिया के कारण महाप्राचीरा से बहुत अधिक सहायता मिलती है।

यकृत-वृद्धि : यदि किसी बाधा के कारण मल-द्वार के क्षेत्र को शिराओं पर पीछे की ओर से दबाव पड़े तो वे फैलती और बढ़ जाती हैं। इसके अलावा अगर शिराओं का पर्दा कमजोर पड़ जाता है तो वह फैल जाता है अर्थात् शिरास्फूर्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी रक्त का पिंडीकरण हो जाने के कारण शिरा अवरुद्ध भी हो जाती है, पर खैरियत यही है कि इससे मल-द्वार के क्षेत्र में रक्त का संचरण पूर्णतः बन्द नहीं होता, क्योंकि तब रक्त अन्य शिराओं द्वारा घूमकर भी वहाँ पहुँच जाया करता है। इस बात को यों भी समझा जा सकता है कि गुद-स्थान एवं आन्त्र की सभी शिराएँ मिलकर प्रतिहारिणी महाशिरा बनती है, जो यकृत में जाकर खुलती है। इसलिए इस शिरा पर जब कभी कोई दबाव पड़ता है या यकृत को विकृति के कारण इस शिरा

का रक्त अच्छी तरह से आगे संचारित नहीं हो पाता है, तो दूषित रक्त एकत्र होकर गुद-शिराओं में भरने लगता है, जिससे वे विस्फारित होकर अंकुर के समान लटक जाते हैं। इन्हीं अंकुरों को **'बवासीर के मस्से'** कहते हैं।

इसीलिए यकृत की अस्तव्यस्तता परोक्ष रूप में बवासीर रोग में सहायक मानी जाती है। यदि यकृत बढ़ जाय, संकुचन कठिन हो जाय या अन्य रोग से आक्रान्त हो जाय तो मल-मार्ग-वाली शिराओं में रक्त के प्रवाह में बाधा पड़ने लगती है।

उदर के अंगों का नीचे लटकना (Plosis) भी, जैसा कि यकृत-वृद्धि में होता है, बवासीर की उत्पत्ति में सहायक माना जाता है।

शिराओं पर दबाव : मल-मार्ग के क्षेत्र की शिराओं पर पीछे से दबाव पड़ने का मुख्य कारण कब्ज तो होता ही है, जिससे उदर में संकुलता प्रस्तुत हो जाती है, साथ ही मल-त्याग में भी जोर लगाना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप शिराओं का प्रसारण भी हो जाता है। रेचकों आदि का निरन्तर प्रयोग भी, आँत के पर्दे और उसको सँभालनेवाले आधारभूत तन्तुओं में, जिनके साथ शिराएँ लगी रहती हैं प्रदाह उत्पन्न कर, उन्हें कमजोर बना देता है।

स्त्रियों में गर्भ गिर जाने से, गुदा-स्थित शिराओं पर गर्भ का दबाव पड़ने से, बहुत प्रसव होने से अथवा विषम प्रसूति के कारण कुपित अपान वायु अधोगत सञ्चित मल पर प्रभाव या दबाव डालता है और बवासीर रोग का कारण बनता है। कभी-कभी साधारण गर्भ की स्थिति में भी बवासीर रोग हो जाता है, पर यह साधारण अल्पकालिक ही होता है। हाँ, यदि अन्य सहायक कारण भी मौजूद हों तो रोग दीर्घकालिक भी हो सकता है। इन सब

कारणों से मर्दों की अपेक्षा स्त्रियाँ बवासीर रोग से अधिक पीड़ित होती हैं।

मस्सों की उत्पत्ति

शरीर में केवल गुद-शिराओं में ही बवासीर के मस्सों की पैदाइश क्यों होती है, अब इस पर विचार किया जाता है।

शरीर में केवल निचले भाग में शिराओं की स्थिति लम्बान में है, जिससे प्रत्येक बार मल त्याग करते समय उस पर दबाव पड़ता है, जिससे रक्त प्रतिहारिणी महाशिरा में नहीं जा पाता है।

ये शिराएँ प्रतिहारिणी महाशिरा के आश्रित रहती हैं। इसलिए यकृत-शोथ या अन्य किसी अर्बुद आदि के दबाव के कारण प्रतिहारिणी शिरा में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। इस कारण गुद-शिराएँ रक्त से भर जाती हैं।

ये शिराएँ उपश्लेष्मल त्वचा के शिथिल तन्तुओं में ही रहती हैं, अतः दबाव का सीधा प्रभाव उन पर पड़ता है।

इन शिराओं को आश्रय देने के लिए इनके चारों ओर कोई कठिन धातु नहीं है। इसलिए शुष्क मल के घर्षण से शिराएँ कभी-कभी फट जाती हैं और रक्तस्राव उत्पन्न हो जाता है।

इन शिराओं में कपाट भी नहीं होते, जो कि रक्त के लौटने में सहायता दें। इसलिए किसी दबाव के कारण सम्पूर्ण मलाशय की शिराओं का रक्त लौटकर गुद-शिराओं में भर जाता है।

गुद-स्थान की शिराओं में रक्त को रुकने का अधिक अवसर मिलता है, क्योंकि हमेशा इसी दशा में मनुष्य को बैठना पड़ता है। इसलिए दबाव गुद पर ही ज्यादा पड़ता है। उपर्युक्त सहायक कारणों से रक्त-प्रवाह में बाधा पड़ने से बवासीर की उत्पत्ति होती है।

शिराओं का संकुचन

वृद्धावस्था में पौरुष (प्रोस्ट्रेट) ग्रन्थि की वृद्धि अथवा मूत्राशय की अश्मरी (पथरी) से भी बवासीर उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि मलाशय की शिराओं पर दबाव पड़ता है।

अधिक देर तक बैठने से या कम व्यायाम करने से गुद-शिराओं पर दबाव पड़ता है। उसके कारण भी बवासीर हो जाती है। इसी प्रकार अधिक देर तक शीतल स्थान में बैठने से अध:गुद शिराएँ संकुचित हो जाती हैं और बवासीर रोग उत्पन्न हो जाता है।

अधिक शराब पीने से यकृत में शोथ उत्पन्न हो जाता है, साथ ही प्रतिहारिणी महाशिरा में भी शोथ हो जाता है, जिससे रक्त-संचार में बाधा उत्पन्न हो जाती है, इसलिए बवासीर की उत्पत्ति हो जाती है।

पेटी के उपयोग से, जिससे साँस लेते समय महाप्राचीरा और उदर की पेशियों की गति सीमित हो जाती है, बहुत अधिक समय तक खड़े रहने या बार-बार बोझ उठाने और माल ढोने से पड़नेवाला जोर भी इसका कारण हो सकता है।

उदर और महाप्राचीरा की पेशियों की हरकत के महत्त्व के विचार से बहुत से लोगों की साँस हलकी होती है। बहुतों में स्नायविक तनाव भी होता है, जिसका अर्थ यह होता है कि उनके उदर की पेशियों का उचित शिथिलीकरण नहीं हो पाता, जिससे उदर और महाप्राचीरा की पेशियों की प्राकृतिक क्रिया उतनी नहीं हो पाती, जिसके फलस्वरूप रक्त का ऊपर बहना भी कम पड़ जाता है। इसकी प्रतिक्रिया मल-मार्ग की शिराओं पर भी होती है और वे बढ़ जाती हैं।

उपर्युक्त अवस्थाओं का प्रभाव मलमार्गीय शिराओं पर पड़नेवाले केवल दबाव और उनके फैलाव के ही रूप में नहीं दोख

पड़ता, बल्कि आगे चलकर यह शरीर के प्रत्येक तन्तु की शक्ति और नमनशीलता भी कम कर देता है, जिससे पेशियाँ, ज्ञान-तन्तु और रक्त-नलिकाएँ कमजोर पड़ जाती हैं।

३. अन्य कारण

कब्ज और गुद-स्थान की शिराओं पर दबाव के अतिरिक्त बवासीर-रोग होने के कतिपय अन्य कारण भी हैं, जिनमें से कुछ ये हैं :

अजीर्ण, अम्लपित्त, शुक्राशय (अति मैथुन) तथा मल का वेग रोकने से भी बवासीर हो सकती है।

उपवास, शोक, क्रोध करने से; अग्नि के पास अधिक बैठने से, रात्रि-जागरण करने से, दिन में सोने से तथा शौचान्तर गरम जल से गुदा धोने से भी बवासीर प्रायः हो जाती है।

बलवान् से लड़ने से तथा ऊँट और घोड़े की सवारी अधिक देर तक करने से भी बवासीर होते देखी गयी है।

कभी-कभी गुद-प्रदेश की क्रिया में गड़बड़ी हो जाने की दशा भी बवासीर का कारण बनती है।

इस रोग के विशेषज्ञ स्मेडले का कहना है कि यह आम विश्वास भी बवासीर की उत्पत्ति में सहायक होता है कि आँतों को रोज काम करना चाहिए और यदि वे प्राकृतिक रूप से काम न करें तो उनसे जबर्दस्ती काम लेना चाहिए। उसका यहाँ तक कहना है कि इसके लिए रेंडी के तेल तक का प्रयोग हानिकारक है और वह स्वस्थ व्यक्ति को भी बवासीर का रोगी बना सकता है।

४. बवासीर के लक्षण

पहले कुछ वर्षों तक मनुष्य को कोष्ठवद्धता रहती है। इसलिए मलत्यागं के समय पीड़ा होती है, जो मल-त्याग के बाद भी कुछ काल तक बनी रहती है। जब तक शिरा प्रकुपित नहीं होती, तब तक रोगी किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव नहीं करता। वह मलद्वार में केवल कुछ भारीपन और खुजली महसूस करता है। जब शिराओं में अधिक रक्त एकत्र होकर मस्से फूलकर बाहर निकल आते हैं, तब रोगी को मल-त्याग करने में, चलने या बैठने में अधिक कष्ट होता है। अधिक सूखे मल को अधिक दबाव डाल-कर निकालने से रक्त निकलने लगता है। पहले केवल मल-त्याग के समय, मल निकलने के पूर्व, थोड़ा-सा रक्त आता है, किन्तु कुछ दिनों बाद रक्त अधिक मात्रा में आने लगता है। गुदा के चारों ओर लालिमा छा जाती है। रोग जितना तीव्र होता है और जितना अधिक रक्त निकलता है, उतना ही रोगी अधिक दुर्बल और पाण्डु-रोग से पीड़ित हो जाता है। इसके चलते सिर-दर्द, मूर्च्छा, शरीर का गिरा रहना और रक्ताल्पता भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो जाती है।

साधारणतः जब अन्न का परिपाक अच्छी तरह न हो, अन्न आमाशय में पड़ा रहे, देह में दुर्बलता महसूस हो, अफरा सताये, मंदाग्नि हो, डकारें बहुत आयें, जाँघों में पीड़ा हो, मल कम निकले, संग्रहणी और पांण्डु-रोग की भ्रान्ति हो, मल-द्वार के पास कुट-कुट का शब्द हो, काँटा चुभने जैसी वेदना हो, बार-बार शौच

जाने की इच्छा हो, गुदा में जलन और खुजली आदि हो, तो समझ लें कि बवासीर रोग अब होनेवाला ही है।

बवासीर का रोगी जब कोई गरम चीज खा लेता है, तो उसकी जीभ लाल होकर उसमें चाँदे पड़ जाते हैं। उसे चलने-फिरने में, श्वास लेने में कष्ट होता है, शरीर में ताप रहता है, मुख, हाथ और पाँवों पर प्रायः सूजन आ जाती है, नपुंसक जैसी स्थिति हो जाती है। आँखों के सामने अँधेरा, मन में चिन्ता, सन्धियों में दर्द आदि लक्षण दीख पड़ते हैं।

जिस रोगी में निम्नलिखित लक्षण पाये जायँ, उसके रोग को असाध्य ही समझना चाहिए—हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषों में शोथ का आ जाना और हृदय तथा पार्श्वों में शूल। ऐसे रोगी की मृत्यु अवश्यम्भावी है।

५. बवासीर के प्रकार

आयुर्वेद में बवासीर के दो प्रकार माने गये हैं—सहज और अर्जित।

१. सहज बवासीर

पिता या माता को बवासीर का रोग रहने से जन्म-काल से पिता-माता कर्तृक बवासीर रोगकारक निदान सेवित हो तो पुत्र को भी बवासीर का रोग हो जाता है। पैतृक दोष के कारण बवासीर रोग परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। इसीलिए इसे सहज बवासीर कहते हैं।

भगवान् चरक ने कहा है :

'तत्र बीजं गुद बलि बीजोपतप्त मायतनमर्शसां सहजानाम् ।'

अर्थात् प्रकृति में गुद बल के बीज में विकृति होने से सहज बवासीर की उत्पत्ति होती है, क्योंकि स्त्री-बीज और पुरुष-बीज में शरीर के प्रत्येक अंग का निर्माण करनेवाले सूक्ष्म बीजावयव रहते हैं। उनमें से जिस अंग के मूल बीजावयव की विकृति होती है, उसी अंग में विकार भी दृष्टिगोचर होते हैं।

सहज बवासीर में मस्से सुण्डाकार, कर्कश, अरुण या पाण्डु वर्ण के होते हैं। उनका मुँह भीतर की तरफ रहता है। इस रोग से पीड़ित रोगी दुःखी, अल्पाहारी, धीमी आवाज से बोलनेवाला, क्रोधी, शिराव्याप्त देहवाला, अल्पप्रज्ञा तथा आँख, कान, नाक, और शिरोरोग से पीड़ित रहता है। साथ ही पेट में 'गुड़-गुड़' शब्द, अन्त्रकुंजन, हृदय में उपलेप, अरुचि आदि उपद्रव दिखाई देते हैं।

२. शरीर दोष द्वारा अर्जित बवासीर

कब्ज, गुद-स्थान की शिराओं पर अनावश्यक दबाव आदि के कारण होनेवाले बवासीर रोग का पीछे वर्णन किया जा चुका है। स्थान एवं दोष के अनुसार बवासीर रोग के कई प्रकार होते हैं। बवासीर रोग सामान्यतः दो प्रकार का होता हैं : १. बादी और २. खूनी।

१. **बादी बवासीर** को **सूखा बवासीर** और **बाह्यार्श** भी कहते हैं, क्योंकि यह प्रथम गुदा बलि में होता है। इसके मस्सों से रक्त-स्राव नहीं होता। इसके मस्से बाहर आसानी से देखे जा सकते हैं। इनमें बार-बार शोथ, जलन और खुजली उत्पन्न होती है। इनके ऊपर त्वचा का आवरण होता है। साधारण अवस्था में जब ये खाली होते हैं, तब प्रतीत नहीं होते, किन्तु प्रकुपित होने पर रक्त

से भरकर ये फूल जाते हैं और प्रत्येक शिरा का अन्तिम भाग एक छोटा-सा अंकुर या गाँठ जैसा मालूम होने लगता है। जब तक इनमें दाह, शोथ या व्रण न हो, तब तक ये दुःख नहीं पहुँचाते, पर अपथ्य से मलावरोध होने पर ये फूलकर नीले रंग के हो जाते हैं और वहाँ पर रक्त जमकर शोथ हो जाता है, जिससे असह्य वेदना होती है। ये मस्से जब दबते हैं, तब रोगी पीड़ा से छटपटाने लगता है। वह सुगमता से चल-फिर नहीं सकता। बैठने में भी उसे कष्ट होता है। उचित चिकित्सा के अभाव में ये मस्से अधिक कठोर हो जाते हैं। ये ठीक नहीं होते तो फोड़ा या कैंसर का रूप धारण कर लेते हैं। तब स्थिति भया-वह हो जाती है।

बादी बवासीर के रोगी को डकार, कब्ज, छाती की सूजन, खाँसी, श्वास-कष्ट, सूखा मल या फेनवाला मल, चिकना और पीड़ा के साथ आता है। रोगी की चमड़ी, नख, आँख, मुख काला, फीका, पीला या सफेद पड़ जाता है।

२. **खूनी बवासीर** को **आर्द्र बवासीर** भी कहते हैं। इसमें मस्से से रक्तस्राव हुआ करता है। इस प्रकार की बवासीर को **आन्तरिक बवासीर** के नाम से भी पुकारा जाता है, क्योंकि इसके मस्से गुदोष्ठ से डेढ़ अंगुल ऊपर पाये जाते हैं। यह बादी बवासीर से अधिक हानिकारक होता है। इसमें मल के बोझ से जब मस्से दबते हैं, तब गरम-गरम खून निकलता है। खून अधिक निकलने से रोगी पीला, कृश तथा हड्डी के पिंजरे जैसा दीखता है। उसका उत्साह कम हो जाता है। उसे श्वास-कष्ट होता है। शक्ति क्षीण हो जाती है। पाखाना सूखा, कठिन या काले रंग का उतरता है। भूख मंद होती है। अधोवायु नहीं छूटती तथा खट्टे पदार्थ खाने से मुख तथा पाँवों पर सूजन आ जाती है।

खूनी बवासीर के मस्सों में भी एक प्रकुपित शिरा और उसके चारों ओर संयोजक तन्तु होते हैं। ये तन्तु मस्सों के पुराने होने पर कड़े और संख्या में अधिक हो जाते हैं। मलाशय के अन्तिम एक या दो इंच के भाग पर चारों ओर बवासीर के मस्से उत्पन्न हो जाते हैं। आरम्भ में ये बहुत मुलायम होते हैं और मल-त्याग के समय गुदा के ऊपर बाहर निकल आते हैं। इनके फट जाने से रक्त अधिक गिरता है, जिससे शरीर में रक्ताल्पता उत्पन्न हो जाती है। मस्सों के बाहर निकल आने पर कभी-कभी वे पुनः भीतर नहीं जा पाते और बाहर ही निकले रहते हैं। तब रोगी को अत्यधिक कष्ट होता है। ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर मस्सों को हाथ से ठेलकर भीतर करना पड़ता है, जिससे रक्तस्राव बढ़ जाता है।

६. बवासीर से कैसे बचें ?

जो व्यक्ति जीवनभर बवासीर के रोग से बचा रहना चाहता है, वह इस रोग के कारणों को मनोयोग से पढ़े और उनसे बचे, तो बवासीर रोग उसे कभी न होगा।

यह याद रखना चाहिए कि पुराने मल से अंशतः या पूर्णतः भरी हुई आँत ही सारे शरीर की विषमता का मूल कारण होती है। मल आंत में जितने अधिक दिनों तक रहता है, उतना ही वह सूखा और कड़ा होता है और उसका रंग मटमैला हो जाता है। कालान्तर में इसमें क्रमशः वृद्धि होती है और जीर्ण कब्ज की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो बवासीर का कारण बनती है।

इसलिए यदि कोई ववासीर रोग से बचना चाहता है तो वह अपने शरीर में यह स्थिति उत्पन्न न होने दे। इसके लिए नीचे के प्रयोगों द्वारा लाभ उठाया जा सकता है :

शौच में सावधानी

१. जब शौच की हाजत महसूस करें तो सारा काम छोड़कर शौचालय फौरन जायें। शौच की हाजत को हरगिज न दबायें, क्योंकि जब शौच की हाजत एक बार दब जाती है तो मुश्किल से पुनः होती है।

२. चौबीस घण्टों में तीन बार शौच जाने की आदत डालें—सुबह नाश्ते के बाद, रात में सोने जाने से पहले तथा सुबह सोकर उठने के बाद। इन्हीं तीन समयों पर आँतों का मल शरीर से बाहर निकलने के लिए तैयार रहता है।

३. शौचालय प्रतिदिन बँधे समय पर जायँ और यदि किसी समय शौच की हाजत न भी हो, तब भी शौचालय अवश्य जायें।

४. शौचालय में काफी देर तक बैठें। जी चाहे तो वहीं बैठे-बैठे अखबार पढ़ें। याद रखिये, शौच के समय जल्दबाजी ठीक नहीं होती, क्योंकि निष्क्रिय आँतें बहुत धीरे-धीरे सक्रिय होती हैं। यदि पहली बार शौच न हो तो पुनः शौचालय जायें।

५. शौचालय की बैठक पर शौच करने बैठिये, तब आराम-देह आसन से बैठिये। यदि अंग्रेजी ढंग के कमोड पर बैठकर शौच करना हो तो आल्थी-पाल्थी मारे हुए शौच करना ठीक रहता है।

६. शौच के वक्त पेड़ू की बायीं तरफ नीचे की ओर बँधी मुट्ठी से दबाव डालने से शौच अक्सर आसानी से हो जाता है।

भोजन में सावधानी

७. शौच समय पर हो, इसके लिए समय पर भोजन करना आवश्यक है।

८. भोजन करने में काफी समय लगाइये। भोजन के समय की चर्वण-क्रिया बड़ी आँत के मल को आगे ढकेलने में मदद करती है।

९. मैदे की रोटी या पूड़ी भूलकर भी मत खाइये। मसालों से परहेज कीजिये। केवल प्राकृतिक सादा भोजन कीजिये, जिसमें फल, सलाद, उबली सब्जी की मात्रा अधिक हो।

१०. मेज की दो चम्मच के बराबर गेहूँ का चोकर हर भोजन के वक्त अवश्य लीजिये। ऐसा करने से कब्ज कभी न रहेगा और यदि होगा भी तो टूट जायगा।

११. कब्ज-निवारणार्थ रेचक औषधियों का सेवन हरगिज न करें। जुलाबवाली सभी दवाइयाँ बेहद खतरनाक होती हैं। वे कब्ज को और आगे बढ़ा देती हैं। गेहूँ का चोकर और ईसपगोल की भूसी आदि निर्दोष दस्त साफ लानेवाली वस्तुएँ हैं। इनका प्रयोग किया जा सकता है। ये खाद्य पदार्थ हैं, दवाएँ नहीं।

१२. प्रातः काल के नाश्ते में नियमपूर्वक एक सेव या संतरा या अमरूद लीजिये।

१३. रात को सोने से पहले एक गिलास गरम पानी में एक या आधा कागजी नीबू का रस निचोड़कर पीजिये तथा सबेरे सोकर उठने पर और हर समय, जब पेट खाली हो तो ठंडे पानी में नीबू लीजिये।

व्यायाम

१४. जमीन पर चित लेट जाइये। दोनों एड़ियों को मिला

लीजिये। दोनों बाँहों को लम्बा करके बदन से सटा लीजिये। अब दोनों पैर बिना मोड़े उठाकर सिर की ओर जितनी दूर ले जा सकें, ले जाइये। इस क्रिया को रोज सुबह शाम १० से २० बार कीजिये। ३-४ मील रोज टहलिये या बागवानी आदि और कोई व्यायाम या श्रम का काम कीजिये।

साँस की कसरतें

१५. रोज कई बार साँस की कसरतें करने की आदत डालिये। इन कसरतों से उदर-प्राचीरा पर एक प्रकार का दबाव पड़ता है, जो आँतों के मल को ढकेलकर आगे बढ़ाता है।

स्नान-मालिश

१६. सबेरे सूर्योदय से पहले ही ठंडे जल से रोज स्नान करें और उसके पहले और बाद में शरीर की सूखी मालिश करें।

चिन्ता-त्याग

१७. किसी प्रकार की चिन्ता आदि को अपने मस्तिष्क में स्थान मत दीजिये, क्योंकि परेशानी, डर, क्रोध, अनिद्रा तथा नाड़ी-दौर्बल्य आदि ऐसे मानसिक उद्वेग हैं, जो मल को आँतों द्वारा नीचे उतरने नहीं देते। ●

७. बवासीर की चिकित्सा

बवासीर-रोग को औषधियों द्वारा दबाने की या पूर्ण रूप से अच्छा करने की कोशिश करना भयंकर भूल है। विभिन्न औषधियों के प्रयोग द्वारा रोग को दबा देने पर प्रायः ऐसा देखा गया है कि समय पाकर रोग पुनः विकराल और भयंकर रूप में उपस्थित हो जाता है या अन्य उपद्रव खड़े कर देता है, जो जीवन के लिए अत्यंत कष्टकर और उसे नष्ट कर देनेवाला होता है। वनस्पति-जगत् की कुछ निर्दोष काष्ठौषधियों के अलावा अन्य जितनी भी उत्तेजक औषधियाँ इस रोग में व्यवहृत होती हैं, उनसे रोग जाने के बदले पुराना और जटिल ही अधिक होता है।

आरम्भ में बवासीर से बहनेवाले रक्त-प्रवाह को औषधियों द्वारा कभी न रोकें, अपितु उपवास (लंघन) द्वारा उसकी चिकित्सा करें। जो मूर्ख चिकित्सक बवासीर के रक्तस्राव को पहले ही रोक देते हैं, वे रोगी का अहित करते हैं; क्योंकि ऐसा करने से बाद के अन्य अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

शल्य-चिकित्सा

शल्य-चिकित्सा द्वारा बवासीर के मस्सों को काटकर अलग कर देना भी रोग की सही चिकित्सा नहीं है। कारण, इस चिकित्सा से रोग का कारण तो ज्यों का त्यों ही बना रहता है, मात्र उसका बाहरी लक्षण दूर हो जाता है, जिससे रोग पुनः उपस्थित हो

सकता है। बवासीर के मस्सों की शल्य-चिकित्सा जीवन के लिए खतरनाक भी सिद्ध हो सकती है।

शल्य-चिकित्सा द्वारा कटे हुए मस्से पुनः उग सकते हैं। इसलिए जो बवासीर के रोगी बवासीर के मस्सों को कटवाकर इतमीनान की साँस लेते हैं और यह समझते हैं कि उनका रोग दूर हो गया, वे भूल में हैं।

औषधि-चिकित्सा तथा शल्य-चिकित्सा के विपरीत प्राकृतिक चिकित्सा में चूंकि बवासीर-रोग के आधारभूत कारणों को ही दूर करने का प्रयत्न किया जाता है, इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा इस रोग की एक उत्तम और सही चिकित्सा मानी जाती है।

उपवास

यकृत-दोष और जीर्ण कोष्ठबद्धता चूंकि बवासीर-रोग के मुख्य कारण हैं, इसलिए रोग-निवारण के लिए सबसे पहले पाचनांगों को विश्राम देकर उनकी क्रियाशीलता बढ़ाना तथा शुद्ध प्राकृतिक भोजन द्वारा शरीर की विषमयता को दूर करना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मैकफेडन के अनुसार इस रोग में सबसे पहले ५ से लेकर २० दिनों तक का उपवास करना चाहिए। उपवास की यह अवधि रोगी की शक्ति और सामर्थ्य पर निर्भर करती है। परन्तु लेखक के मतानुसार अल्पकालिक उपवास विशेष प्रभावी होते हैं। साधारणतः ३ से ७ दिनों के उपवास से काम चल जाता है। तीन दिनों के उपवास के बाद दूसरा उपवास महीनेभर बाद करना ठीक होगा। उपवास के दिनों में रोज २-३ सेर पानी पीना लाभदायक होता है।

उपवास कैसे तोड़ें ?

उपवास तोड़ने के लिए पहले दिन किसी सब्जी या फल का

रस दिन में तीन बार पाव-पावभर की मात्रा में लें। दूसरे दिन कोई रसीला फल या तरकारी लें। तीसरे दिन एक बार मट्ठा, एक बार थोड़ा-सा दलिया, थोड़ी-सी तरकारी और दही लें। तीसरी बार दलिया और तरकारी लें। फिर धीरे-धीरे सादे भोजन पर आ जायँ। सादा भोजन इस प्रकार हो कि पेट साफ रहे और मल कड़ा न पड़ने पाये।

भोजन में केवल फलों का रस, पके फल, उबली सब्जी, सूप, सलाद, दही, मट्ठा आदि रहना चाहिए। प्रातः, निहार मुँह मूली का रस आधी छटाँक लेने के आध घण्टा बाद, रातभर पानी में भीगे हुए चार आलूबोखारों को मलकर छानकर लेना चाहिए और जिस पानी में आलूबोखारे भिगोये गये हैं, उसे भी पी लेना चाहिए। इसके अलावा दिन में कई बार दो भाग गाजर का रस तथा एक भाग मूली का रस मिलाकर पीना भी बड़ा गुणकारी होता है।

रात को सोने के पहले एक पाव गरम जल में एक कागजी नीबू का रस मिलाकर पीना लाभदायक है।

नमक का प्रयोग बवासीर के रोगी को कुछ दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए। जमीकंद की तरकारी इस रोग में लाभकारी है।

बादी बवासीर में गाय के दही का बना ताजा मट्ठा अमृत के समान लाभकारी सिद्ध होता है। 'भावप्रकाश' में लिखा है कि तक्र यानी मट्ठा के प्रयोग से नष्ट हुए बवासीर के मस्से पुनः नहीं निकलते। जिस रोगी को मंदाग्नि हो, उसे केवल मक्खन निकाले हुए मट्ठे का प्रयोग करना चाहिए। उसे अन्न-भोजन नहीं करना चाहिए।

व्यायाम

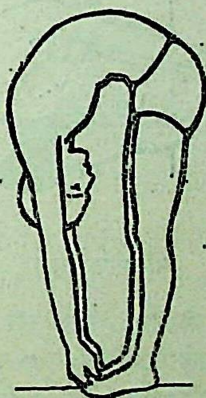
बवासीर के रोगी को कठिन व्यायाम करने तथा भारी बोझ आदि उठाने से परहेज करना चाहिए। फिर भी उसे हलका व्यायाम

प्रतिदिन अवश्य करते रहना चाहिए। शक्तिभर टहलने का व्यायाम उसके लिए लाभप्रद होता है। महाप्राचीर और उदर की पेशियों की गति और शक्ति बढ़ाने के लिए साँस की कसरतें भी करनी चाहिए। व्यायाम के बाद लेटकर कम-से-कम १०-१५ मिनट पूर्ण विश्राम या **शवासन** द्वारा शिथिलीकरण करना चाहिए। यदि शिथिलीकरण करने का आसन या तख्ता पैर की तरफ १६ इंच ऊँचा रखा जाय, तो अधिक प्रभावकारी होता है।

योगासन

बवासीर-रोग की चिकित्सा के साथ-साथ निम्नलिखित योगासन बड़े कारगर सिद्ध होते हैं :

१. पादहस्तासन : सीधे खड़े हो जायें। दोनों पाँवों के पंजे एक-दूसरे से मिला लें। दोनों हाथों को ऊँचा कर लें। अब धीरे-

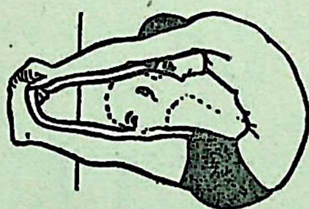


पादहस्तासन

धीरे सिर को नीचे की ओर झुकाना आरम्भ करें और इतना झुकाने की कोशिश करें कि पीठ झुककर धनुषाकार हो जाय।

हाथों को नीचे की तरफ पैर के अँगूठों की ओर ले जाकर उन्हें पकड़ने की चेष्टा करें या दोनों हाथों की हथेलियों को जमीन पर रखें। घुटने न मुड़ने पायें और हाथ भी कड़े बने रहें। अब धीरे-धीरे अँगूठे को छोड़कर पूर्वावस्था में आ जायँ। साँस की क्रिया साधारण रूप से चलती रहे। यह आसन दो बार से आरम्भ करें और धीरे-धीरे दस बार तक ले जायँ।

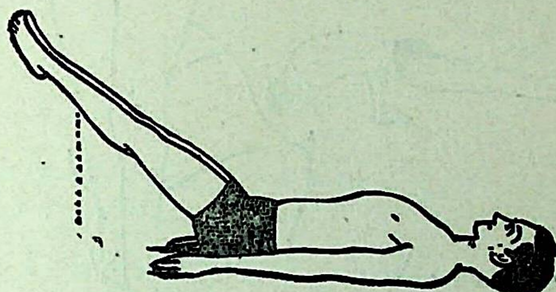
२. पश्चिमोत्तानासन : जमीन पर बैठ जायँ। अपने दोनों पाँव अपने सामने सीधे फैलायें। 'दोनों पैर आपस में एक-दूसरे से सटे रहें। अब धीरे-धीरे सिर को पाँवों की ओर झुकाना आरम्भ करें और तब तक झुकाते रहें, जब तक कि माथा घुटनों का स्पर्श न करे। साँस छोड़ते हुए पाँवों की ओर बढ़ें। घुटनों पर माथा रखने के बाद हाथों को पाँवों की ओर फैलाना आरम्भ करें और इतना



पश्चिमोत्तानासन

फैलायें कि दोनों पैर के अँगूठे पकड़े जा सकें। हाथ-पाँव दोनों बिल्कुल सीधे और कड़े रहने चाहिए। कुछ क्षण रुकने के बाद साँस लेते हुए धीरे-धीरे ऊपर उठें। पहले साँस लेने और छोड़ने पर जोर न दें। कुछ दिन के अभ्यास के बाद ही साँस की क्रिया आरम्भ करनी चाहिए। झटके से शरीर को पाँवों की ओर ले जाने का प्रयत्न न करें।

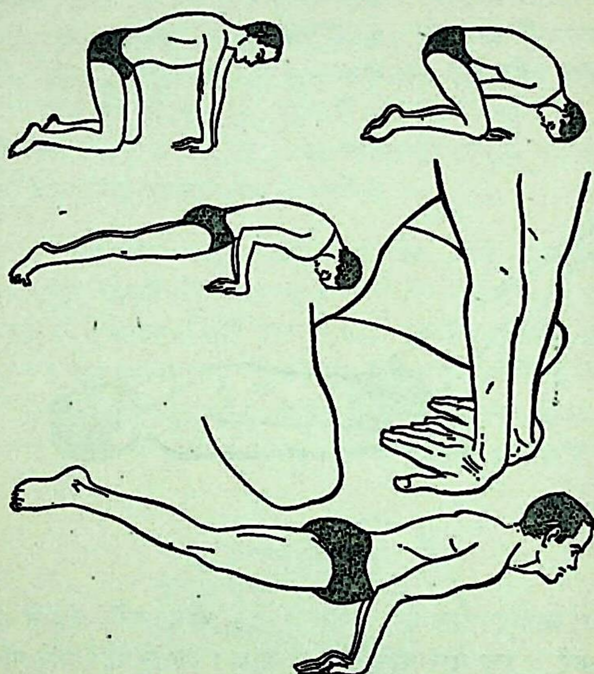
३. उत्तानपादासन : जमीन पर पीठ के बल लेट जायँ। शरीर को बिल्कुल ढीला कर दें। दोनों हाथ वगल में सटाकर रखें। अब दोनों पाँवों को बहुत धीरे-धीरे ऊपर उठावें। पाँवों को एक हाथ



उत्तानपादासन

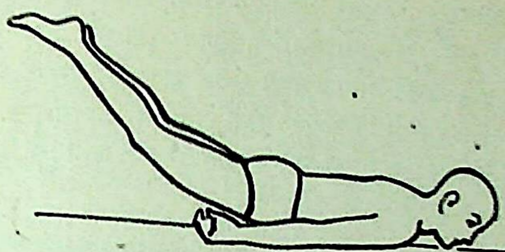
ऊपर ले जाकर रोक दें। जितनी देर रोक सकें, रोकने का प्रयत्न करें। अब धीरे-धीरे नीचे ले आयें। जितने धीरे-धीरे पांव ऊपर ले जायँ, उतने ही धीरे-धीरे वापस लायें।

४. मयूरासन : घुटनों के बल बैठें, ताकि नितम्ब एड़ियों पर रहें। घुटनों से करीब एक फुट की दूरी पर दोनों हाथों की कलाई पास-पास रखकर पूरा पंजा जमीन पर रखें। पंजों की अँगुलियाँ घुटनों की तरफ रहें। अब दोनों कुहनियों को नाभि के पास लगाकर अपने शरीर का भार पंजों पर डालें, ताकि आप अपने शरीर का भार जमीन के ऊपर से उठा सकें। अपने शरीर को जितना हो सके, जमीन से ऊपर उठायें। सिर और पैर सीधे रखें। इस आसन पर ४-५ सेकण्ड रहें। फिर प्रयत्न करें।



मयूरासन

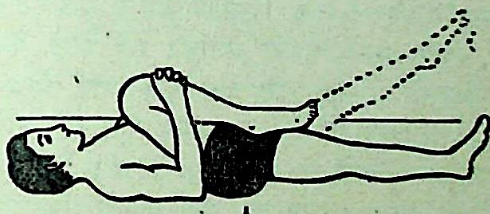
५. शलभासन : जमीन पर पेट के बल सीधे लेट जायँ। ठोढ़ी जमीन पर रख दें। अपने दोनों हाथ अपनी बगल में जाँघों के पास मुट्ठी बाँधकर सीधे तानकर रखें। अब अपना एक पाँव सीधा ताने हुए जितना भी ऊँचा उठा सकें, उठायें। पैर को इस स्थिति में कुछ सेकण्ड तक रखें। उसके बाद धीरे-धीरे उसे जमीन पर रख दें। यही क्रिया दूसरे पैर से भी करें। इसके बाद दोनों पैर एक साथ जमीन से ७-८ इंच ऊपर उठायें। यह अभ्यास धीरे-



शलभासन

धीरे बढ़ायें। अभ्यास हो जाने के बाद पैर १८ से २० इंच तक ऊपर उठा सकेंगे।

६. पवनमुक्तासन : पीठ के बल सीधे लेट जायें। पैरों को लम्बा कर दें। अब दोनों पैरों को धीरे-धीरे मोड़ते हुए छाती के



पवनमुक्तासन

पास ले आयें। साँस को नाक द्वारा पेट से पूरी तरह निकाल दें। अब दोनों हाथों को मोड़े हुए पैरों पर रखकर जितना दबा सकें, दबा लें। फिर पैरों को धीरे-धीरे सीधा करते हुए साँस को पेट में भरें। कुछ क्षणों तक विश्राम करें। इस आसन को ५-६ बार करें। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर १०-१२ बार तक ले जा सकते हैं।

७. शीर्षासन : किसी दीवार के पास जमीन पर एक गद्दी रखें। अब हाथों को कुहनियों तक गद्दी पर रखें और घुटने जमीन पर टेक दें। सामने दीवाल होगी। एक हाथ की अँगुलियाँ दूसरे हाथ की अँगुलियों में फँसाकर दोनों हथेलियों को बाँध लें और आगे को सिर झुकाकर उसे गद्दी पर इस तरह ले आयें कि सिर का पिछला भाग हथेलियों में आ जाय।

तत्पश्चात् सिर के बल शरीर का बोझ डालकर धड़ को ऊपर उठायें। धीरे-धीरे टाँगों का ऊपर ले जायँ। यहाँ तक कि शरीर सीधा तन जाय और ऊपर से नीचे तक एक सरल रेखा-सी बन जाय। ऐसा करने में दीवार की सहायता ली जा सकती है।

अन्त में टाँगों को धीरे-धीरे नीचे ले आकर पहली स्थिति में हो जायँ। फिर थोड़ी देर के लिए एक दम सीधे खड़े हो जायँ, फिर शवासन करें।

८. शवासन : एक कम्बल बिछाकर पीठ के बल लेट जायँ। दोनों हाथ जमीन पर शरीर से लगाकर रखें, दोनों पैर सीधे रहें, एड़ियाँ खुली रहें तथा पंजे खुले रहें। आँखें बन्द करके समस्त शरीर को ढीला कर दें। इस समय बहुत धीरे-धीरे साँस लें तथा चित्त की वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर दें। पैरों के अँगूठे ढाले करने की क्रिया आरम्भ करें तथा क्रम से पिंडली, पीठ,

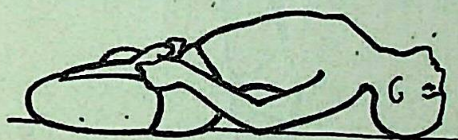


शवासन

छाती, गर्दन और सिर की मांसपेशियों को ढीला करते जायँ। इस बात का ध्यान रखें कि पेट, हृदय, छाती और मस्तिष्क सभी

ढीले पड़ जायँ। एक क्रम से चलना चहिए। इससे पूर्ण शान्ति, आराम और सुख प्राप्त होगा। सब आसन कर चुकने के बाद इसको करने से विशेष लाभ होता है।

९. मत्स्यासन : पद्मासन लगाकर बैठ जायँ। उसके बाद पीछे की ओर हाथों के बल इस प्रकार झुकें कि सिर की शिखा के पास का भाग जमीन पर जा टिके। इस स्थिति में नितम्ब और सिर के बीच का अर्ध धनुषाकार भाग जमीन से ऊपर उठा रहेगा। ठुड्डी ऊपर आकाश की ओर होगी और छाती अधिक-से-अधिक ऊपर की ओर तनी होगी। सीने को ऊपर खींचने के पहले हाथों की मध्य अँगुलियों और अँगूठों से पैर के अँगूठे को पकड़ लें। ऐसा करने में यह आवश्यक है कि जाँघों से घुटनों तक के अंग जमीन से सटे रहें।



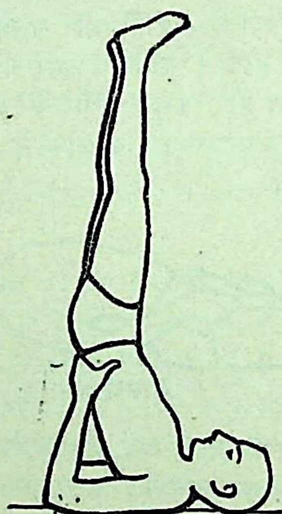
मत्स्यासन

पुनः पूर्वावस्था में आने लगें तो पैर के अँगूठे को छोड़कर हाथों के सहारे सिर पर पड़नेवाला भार हल्का कर दें और इन्हीं के सहारे पूर्वावस्था में आ जायँ।

साधारण पल्थी लगाकर भी यह आसन किया जा सकता है। इस अवस्था में पैरों के अँगूठे को पकड़ना संभव न होगा। अतः हाथों को सामने जाँघों पर रख सकते हैं। १० सेकण्ड से बढ़ाकर एक मिनट तक इस आसन को करना चाहिए। एक समय में ३ बार इस आसन को करना काफी होता है।

१०. सर्वांगासन : एक मोटा कम्बल भूमि पर बिछाकर उस

पर पीठ के बल लेट जायँ। उसके बाद क्रमशः पैरों को जमीन पर से ऊपर उठायें, साथ ही साथ धड़ और नितम्ब को इस प्रकार उठायें कि वे सभी अंग एक सीध में खड़े हो जायँ। दोनों कुहनियों को जमीन पर रखें, जिससे शरीर सीधा तना रहे। ठुड्डी को छाती से लगाकर दबाये रहें। आसन करते समय सिर का पिछला भाग



सर्वांगासन

गर्दन तथा कन्धे जमीन से लगे रहें। इस समय साँस की गति बहुत धीमी कर दें तथा गर्दन के सामनेवाली निचली स्नायु पर ध्यान जमायें। आसन की समाप्ति पर पैरों को धीरे-धीरे नीचे उतारें। जरा भी धक्का न लगने दें। इस आसन के तुरन्त बाद

मत्स्यासन करना चाहिए। तत्पश्चात् शवासन। इस आसन को २ मिनट से बढ़ाकर ३० मिनट तक ले जाना चाहिए।

प्राकृतिक उपचार

रोग में काफी सुधार होने तक प्रतिदिन दो तीन बार एनिमा लेना चाहिए। पहले गुनगुने पानी का, उसके बाद ठंडे पानी का।

सायंकाल सोते वक्त एक छटाँक नारियल के तेल में आधी छटाँक कागजी नीबू का रस मिलाकर आधा पाव पानी का एनिमा लेना चाहिए और उसे रातभर रोक रखना चाहिए। इस प्रकार का रोक एनिमा लेने के बाद गीली मिट्टी को एक गेंद-सा बनाकर उसे गुदा पर रखकर पट्टी लगाकर वहीं स्थिर कर देनी चाहिए और उसे भी रातभर रहने देना चाहिए। इससे बड़ी आँत के पर्दे को ठंडक पहुँचती है और मल भी ढीला पड़ जाता है।

'रोक एनिमा' के साथ-साथ पेड़ू, जाँघ और कटि-प्रदेश पर ऊनी कपड़े की पट्टी रातभर के लिए देकर गर्मी पहुँचाने की कोशिश करनी चाहिए।

अगर इन उपचारों के बावजूद मल-त्याग में कष्ट हो तो गरम-ठंडा कटि-स्नान की व्यवस्था होनी चाहिए। तीन मिनट तक गरम पानी में बैठने के बाद एक मिनट तक ठंडे पानी में बैठना चाहिए। ऐसा तीन चार बार करना चाहिए। उस वक्त सिर पर ठंडी तौलिया अवश्य रखनी चाहिए। इस स्नान के बाद ठंडे जल से समूचे शरीर का साधारण स्नान कर शरीर की सूखी मालिश करनी चाहिए।

पुराने बवासीर में रोज सुबह-शाम १५-२० मिनट तक मस्सों पर भाप देने के बाद १०–१५ मिनट कटि-स्नान लेना चाहिए।

रोज एक बार पेडू पर गीली मिट्टी की पट्टी भी ३० से ४५ मिनट के लिए लगानी चाहिए।

खूनी बवासीर में हरी बोतल के सूर्यतप्त जल की ४ खुराकें और बादी बवासीर में नारंगी रंग की बोतल के जल की उतनी ही खुराकें आधी-आधी छटाँक की मात्रा में पीनी चाहिए।

बवासीर में गणेश-क्रिया से बड़ा लाभ होता है। उसकी विधि यह है :

प्रात:काल जब शौच जायें तो साथ में जल ले जायें। पाखाना हो चुकने के बाद गुदा साफ करते समय बायें हाथ की मध्यमा अँगुली पर सरसों का तेल लगाकर उसे गुदा के भीतर घुमायें। इसके बाद अँगुली और गुदा को पानी से साफ कर लें। यदि गुदा के भीतरी भाग में चिपका हुआ मल रह गया हो तो दूसरी बार भी यह क्रिया की जा सकती है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि गुदा के भीतर चिपका हुआ मल न रह जाय। अँगुली का नाखून बढ़ा हुआ नहीं रहना चाहिए।

कैलाग के मतानुसार मस्से के सूजन की दशा में रोगी की चारपाई को पाँवों की ओर से ऊँचा करके रखना चाहिए। उस काल में गुदा पर ठंडी पट्टी के प्रयोग तथा कटि-स्नान से बड़ा लाभ होता है। यदि दर्द अधिक हो तो हलका गरम सेंक के तुरन्त बाद गुदा तथा सीवन पर ठंडी पट्टियों का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही पैरों को गरम पानी में डुबोये रखना चाहिए। घण्टे-दो घण्टे के अन्तर से इस प्रयोग को दोहराते रहना चाहिए। प्रतिदिन सुबह १०–१२ मिनट तक प्राकृतिक स्नान करना इस रोग में उपकारी होता है। एक छिछले टब में ४ से ६ इंच गहरा पानी डालें। रोगी टब में पाँव अन्दर रखकर बैठे और पानी के अन्दर दाहिने हाथ से गुदा, सीवन और अण्डकोषों आदि को ५ से १०

मिनट तक मले। फिर बायें हाथ से पानी को पेट पर उछालें और दाहिने हाथ से पेडू के निचले भाग को एक ओर से दूसरी ओर तक जल्दी-जल्दी ५ से १० मिनट तक मलें। स्नान समाप्त करते समय दोनों हाथों से पानी को उछालकर सारे शरीर पर डालें। टब में खड़े होकर अपने हाथों से शरीर को खूब मलें, जब तक कि शरीर पर का पानी सूख न जाय।

खूनी बवासीर में जब रक्तस्राव हो रहा हो और पीड़ा सता रही हो तो एक से दो घण्टे तक लगातार बर्फ की थैली रखनी चाहिए या गीली मिट्टी की ठंडी पट्टी बराबर रखनी चाहिए। उस मिट्टी में नीबू का रस मिला लेने से अधिक लाभ होता है।

उपर्युक्त उपचार के अलावा रोग की दशा एवं उसकी तेजी-मंदी के अनुसार पाँवों के गरम स्नान, कमर की गीली लपेट, मेहन-स्नान, पाँवों की लपेट तथा घर्षण-स्नान की भी जरूरत पड़ सकती है।

कुछ आयुर्वेदिक प्रयोग

१. रीठे का छिलका एक पाव सुखाकर चूर्ण तैयार करें। फिर जल के योग से उसकी चने के बराबर गोलियाँ बनायें। बादी बवासीर में मट्ठा के साथ दोनों समय एक-एक गोली सेवन करें। खूनी बवासीर में ताजा जल से ग्रहण करें।

२. हरीतकी एक तोला, दूध एक पाव, जल एक पाव—तीनों का काढ़ा बनाकर प्रातः-सायं पीने से खूनी बवासीर में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

३. नीबू को काटकर आधा-आधा कर दें। इसमें असली लाल कत्था भरकर रात को ओस में रख दें। प्रातःकाल चूसें। पहले दिन ही खूनी बवासीर में रक्त आना बन्द हो जायगा।

४. नारियल की जटाएँ जलाकर कपड़छान कर शीशीमें रखें।

एक माशा यह चूर्ण और दो माशा देशी शक्कर मिलाकर दिन में दो बार ठंडे जल से लें तो खूनी बवासीर में लाभ होगा।

५. गेंदे के हरे पत्तों को काली मिर्च के साथ पानी के योग से पीसकर एक छटाँक रस बनायें और सुबह-शाम ताजा-ताजा पीयें तो २० से ३० दिन में बवासीर में लाभ होगा।

८. प्रयोग-विधियाँ

गीली मिट्टी की पट्टी लगाना

साफ मिट्टी को कूट-पीसकर छलनी से छान लेना चाहिए। फिर उसमें ठंडा पानी मिलाकर किसी काठ के डण्डे से गूँधकर आटे की तरह बना लेना चाहिए। अब १०-१२ इञ्च लम्बा और ६-७ इञ्च चौड़ा एक मोटा कपड़ा लेकर उस पर सेर-डेढ़ सेर मिट्टी को आधी इञ्च को मोटाई में फैलाना चाहिए और उसे उठाकर मिट्टी की तरफ से पेडू पर रखकर, उस पर सूखा ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिए। इस तरह मिट्टी त्वचा को छूती रहेगी और थोड़ी देर में गरम हो जायगी। २० से ३० मिनट तक यह पट्टी लगानी चाहिए। उसके बाद इसे हटाकर पेडू को गीले कपड़े से पोंछकर साफ कर देना चाहिए और उस स्थान को हाथ की हथेलियों से रगड़कर गरम कर देना चाहिए।

कमर की गीली लपेट

कमर की गीली लपेट के लिए ७-८ फुट लम्बा और ६ इञ्च चौड़ा एक सूती कपड़ा लेकर ठंडे पानी में भिगोकर थोड़ा निचोड़ देना चाहिए। फिर उसे पेडू से लेकर पीछे कमर के भाग तक

चारों ओर इस प्रकार लपेटना चाहिए कि कपड़ा अच्छी तरह से त्वचा को छूता रहे। उसके ऊपर इतना ही लम्बा-चौड़ा सूखा ऊनी कपड़ा लपेटना चाहिए और उसे सेफ्टो पिन या पतली रस्सी से इस तरह बांध देना चाहिए कि ढीला न हो पाये।

इस पट्टी को शाम के भोजन के ढाई घण्टा बाद बाँधना चाहिए। यह पट्टी डेढ़ से दो घण्टे तक या सारी रात बँधी रहनी चाहिए।

शुष्क घर्षण-स्नान

शुष्क घर्षण-स्नान के लिए अपनी हथेलियों से शरीर के अंग-प्रत्यंग को सिर से पैर तक अच्छी तरह और तेजी से इतना रगड़ना चाहिए कि समूचे शरीर में लालिमा आ जाय। जाँघ और टाँगों को रगड़ते हुए घुटनों को सीधा और तना रखना चाहिए। इससे रीढ़, पेट तथा समस्त स्नायु मण्डल को लाभ पहुँचता है। इस स्नान में तेल आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस स्नान के बाद ठंडे पानी से स्नान करना जरूरो है। उसके बाद फिर एक बार घर्षण-स्नान करना आवश्यक है।

गरम-ठंडा कटि-स्नान

दो टबों में पानी भरें। एक में ठंडा पानी रहे, दूसरे में गरम। पहले गरम पानीवाले टब में ३ मिनट तक बैठें। फिर उठकर तुरन्त ठंडे पानीवाले टब में ३ मिनट तक बैठें। इस प्रकार तीन बार करें। फिर शरीर पोंछकर कपड़ा पहन लें। जब गरम पानीवाले टब में बैठ तो सिर पर ठंडे पानी से भीगा तौलिया अवश्य रख लें।

मेहन-स्नान

कटि-स्नानवाले टब में एक फुट, ६ इञ्च ऊँची और ६ इञ्च चौड़ी काठ की चौकी या ईंट रखें। टब में इतना पानी भरें कि

पानी चौकी के चारों तरफ आ जाय। पानी ठंडा होना चाहिए। अब चौकी पर नंगे बदन बैठें। लिंग के घूँघट को बायें हाथ की अंगुलियों के वीच पकड़कर खाल के अग्रभाग को किसी मुलायम कपड़े को टव के पानी में भिगो-भिगोकर उससे धीरे-धीरे छुएँ या हल्के-हल्के रगड़े। स्त्रियाँ इस स्नान को करते समय अपनी योनि के दोनों तरफ के बड़े होठों को धीरे-धीरे धोयें। इस स्नान के बाद शरीर को गरम करने के लिए कपड़ा पहनकर टहलें या कम्बल ओढ़कर एक घण्टा लेट जायँ।

पाँवों की लपेट

टखने से लेकर घुटने तक पैरों को निचोड़े हुए गीले कपड़े से लपेटकर ऊपर से उस पर सूखा ऊनी कपड़ा लपेट देना चाहिए। पैर गरम न रहे तो बीच-बीच में उस पर गरम पानी की थैली या बोतल रखकर उसे गरम रखना चाहिए। लपेट देकर समूचे शरीर को कम्बल से ढँककर रखना चाहिए और सिर पर भीगी तौलिया रखनी चाहिए।

घर्षण-स्नान

गीले गमछे से दाहिना हाथ ढँककर तथा गमछे का शेष भाग बायें हाथ में अच्छी तरह पकड़कर दाहिने हाथ से रोगी की देह रगड़नो चाहिए। एक बार में देह का सिर्फ एक छोटा अंश इस तरह रगड़-रगड़कर गरम कर लेना चाहिए। बाद में उस अंग को ढँककर दूसरे अंग को रगड़ना चाहिए। देह की गरम हालत में यह घर्षण-स्नान देना चाहिए। घर्षण देते समय समूचे बदन को एक चादर से ढँककर रखना चाहिए।

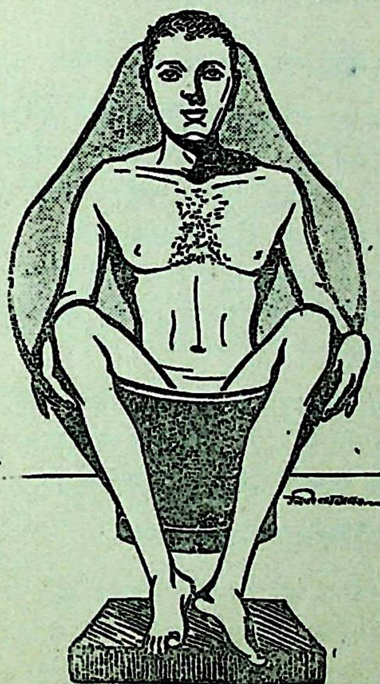
गरम-ठंडा सेंक

गरम-ठंडे सेंक के लिए पहले छाती को गरम पानी में भिगोये, फिर निचोड़े हुए तौलिये से ३ मिनट सेंकना चाहिए।

उसके वाद गरम पानी में भीगे तौलिये को हटाकर ठंडे पानी में भीगा और निचोड़ा हुआ तौलिया उस स्थान पर एक मिनट तक रखना चाहिए। तीन से पाँच वार तक यह क्रिया करनी चाहिए। अंतिम वार ठंडा तौलिया न रखकर छाती की गीली पट्टी बाँधनी चाहिए।

घर्षण कटि-स्नान

कुर्सीनुमा नहाने के टब में ठंडा पानी इतना भरना चाहिए



घर्षण कटि-स्नान

कि उसमें नहाने के लिए बैठने पर पानी दोनों टाँगों और नाभि

तक पहुँच जाय। बाकी सब बदन सूखा रहे। जाड़ों में नाभि और टाँगों के ऊपर के हिस्से को कपड़े से ढँककर रखा जा सकता है। अब खद्दर का एक खुरदुरा छोटा तौलिया बायें हाथ में लेकर उससे पानी में डूबे पेडू को दायें हाथ से बायीं ओर और बायें हाथ से दायीं ओर धीरे-धीरे, पर जल्दी-जल्दी मलना चाहिए। यह स्नान १० से २० मिनट तक किया जा सकता है। इसे एक-दो मिनट से शुरू करना चाहिए और रोज एक-एक मिनट बढ़ा कर आवश्यक समय तक पहुँचना चाहिए।

रंगीन बोतल में सूर्य-तप्त जल और तेल बनाना

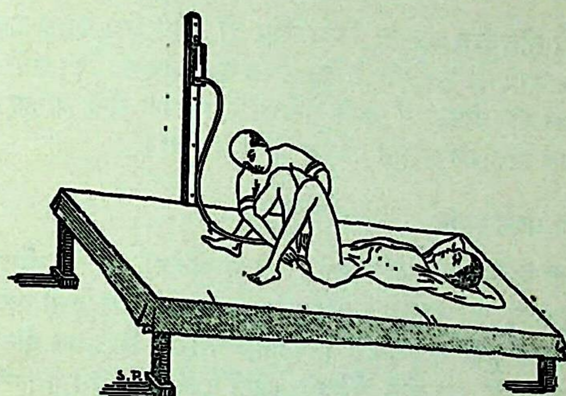
जिस रंग की बोतल में सूर्य-तप्त जल बनाना हो, उसे खूब साफ करके उसमें जल भरकर और काग लगाकर किसी लकड़ी की पट्टी पर ऐसी जगह रखना चाहिए, जहाँ १० बजे दिन से ५ बजे शाम तक धूप रहे। ५ बजे शाम को बोतल उठाकर किसी लकड़ी की आलमारी में रख छोड़ें और उसका जल काम में लायें। यह जल २४ घण्टे तक दवा का काम देता है। बाद में दूसरा जल बना लें।

बोतल में जल की जगह तिल्ली आदि का तेल भरकर सूरज के सामने १० बजे से ५ बजे तक रोज रखा जाता है, तो ४० दिन में तेल दवा के काम के लिए तैयार होता है।

एनिमा लेने की विधि

किसी तख्ते या खाट पर चित लेटकर और पैताने को सिरहाने से ४ इंच ऊँचा रखकर एनिमा लेना चाहिए। एनिमा का पात्र लेटने के स्थान से तीन फुट की ऊँचाई पर ढाई सेर के लगभग गुनगुना पानी भरकर टाँगना चाहिए। टोंटी से थोड़ा पानी निकालकर उसे गुदा-मार्ग में प्रवेश करके आँतों में पानी

जाने देना चाहिए। जितना पानी जा सके, उतना पानी जाने देने के बाद, दो-तीन मिनट रुककर शौच जाना चाहिए।



एनिमा लेना

यदि एनिमा के पानी में ८-१० बूँद कागजी नीबू का रस भी निचोड़ दिया जाय तो सफाई अच्छी होती है।

श्वास की साधारण कसरत

खुली जगह में बैठकर, खड़े होकर या टहलते हुए धीरे-धीरे श्वास लेते हुए फेफड़ों को हवा से भरना चाहिए। फिर बहुत धीरे-धीरे उस साँस को निकाल देना चाहिए। इस क्रिया को कई बार करना चाहिए।

उपवास

उपवास में पानी के सिवा कुछ नहीं लेना चाहिए। पानी में थोड़ा-सा कागजी नीबू का रस मिला लेना चाहिए। उपवास के दिनों में थोड़ा-थोड़ा करके सेर या उससे कुछ अधिक पानी जरूर

पीना चाहिए। उपवास के दिनों में दोनों वक्त सेर-डेढ़ सेर गरम पानी का एनिमा जरूर लेना चाहिए।

यदि तीन दिन उपवास किया जाय तो चौथे दिन केवल फल या तरकारियों का रस, पाँचवें दिन केवल फल और छठे दिन सबेरे-शाम फल और दोपहर में थोड़ी रोटी और तरकारी लेनी चाहिए। तत्पश्चात् साधारण भोजन पर आ जाना चाहिए।

पाँवों का गरम स्नान

रोगी के सिर को पहले ठण्डे पानी से धोकर, उस पर गीला तौलिया लपेट देना चाहिए। उसके बाद उसको नंगे बदन किसी बन्द कमरे में एक कुर्सी पर इस तरह बैठाना चाहिए कि उसके दोनों पाँव सामने रखे हुए चौड़े पेंदे की छोटी बाल्टी में रहें। बाल्टी में ८-९ इञ्च गहरा पानी भरा हो। बाल्टी में दोनों पाँव रखने से पानी घुटने के थोड़ा ऊपर तक आ जायगा। बाल्टी के जल का तापमान पहले १०२° फारेनहाइट रखना चाहिए, परन्तु उसमें से क्रमशः पानी निकाल-निकालकर और उसकी जगह अधिक-से-अधिक गरम पानी डालकर उसके तापमान को ११०° से ११५° तक ले जाना चाहिए। स्नान के लिए जितना गरम पानी धीरे-धीरे लिया जायगा, उतना ही अधिक लाभ होगा। यह गरम स्नान ५ से ३० मिनट तक लिया जा सकता है। गर्मियों में इस स्नान से १५ से २५ मिनट में खूब पसीना आ जाता है। जाड़ों में उतना पसीना लाने के लिए कुछ अधिक समय लग सकता है।

स्नान की समाप्ति पर पाँवों को गरम जल से निकालकर आधे मिनट से एक मिनट तक ठण्डे जल में रखना चाहिए। फिर उन्हें भीगे तौलिये से अच्छी तरह पोंछ देना चाहिए। तत्पश्चात् १०-१५ मिनट उन्हें थोड़ा जोर से मलना चाहिए।

जब इस स्नान से पसीना लाना अभीष्ट हो तो रोगी के शरीर को बाल्टी सहित कम्बल से पूरी तरह ढंक देना चाहिए। सिर पर रखे ठण्डे तौलिया को बीच-बीच में ठण्डे पानी से तर करते रहना चाहिए या भीगे तौलिये को ही बदलते रहना चाहिए। इस



पाँवों का गरम स्नान

स्नान के शुरू में थोड़ा-सा गरम पानी पीना चाहिए और बीच-बीच में भी थोड़ा-थोड़ा गरम पानी पीते रहना चाहिए। शरीर पर पसीना आने पर स्नान के बाद उसे भीगे कपड़े से पोंछ देना चाहिए या साधारण स्नान कर लेना चाहिए।

●



प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य

उपवास से जीवन-रक्षा	शेल्टन	४-००
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि	डॉ० शरणप्रसाद	४-००
प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान	,,	४-००
पाचन-तंत्र के रोगों की चिकित्सा	,,	४-००
दमा : निदान और उपचार	,,	२-५०
उपवास	,,	३-००
हृदय-रोग	,,	१-७५
स्त्री-रोगों की सरल चिकित्सा	,,	३-००
सन्धिवात	,,	(प्रेस में)
दमा का प्राकृतिक इलाज	धर्मचन्द सरावगी	२-५०
घरेलू प्राकृतिक चिकित्सा	,,	१-२५
ब्लड प्रेशर की प्राकृतिक चिकित्सा	,,	२-००
लकवा की प्राकृतिक चिकित्सा	,,	१-७५
मोटापा की प्राकृतिक चिकित्सा	,,	१-७५
शिशु-पालन-विज्ञान	गंगाप्रसाद गौड़	१-००
स्वस्थ कैसे रहें ?	डॉ० जस्सावाला	०-८०
कब्ज और विकार दूर करने के उपाय	बालकोबा	०-७५
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	विनोबा	०-२५
वनौषधि-शतक	रामनाथ वैद्य	४-००
योग	राधाकृष्ण नेवटिया	१-००
प्राणायाम	,,	१-२५

